श्री ओंकार निरूपण

विरचित कविवर शक्तसिंहजी निवासी दतोप
ताबे डिग्गी स्टेट दुढार

वन्दे ब्रह्मान्ड विस्तीरणं पूरितं परमं सुखं ।
मन्डित भाल बालेन्दु देवाऽधीश दिगंम्बर ॥१॥
त्राहिमाम् त्रिगुण रूपं विरूपं विश्व बोधितं ।
नमस्तुभ्यं निरंकारं ऊँकारमखिलेश्वरम् ॥२॥

कवि खिताव कुछ भुज कियो पींगल रो करिपास ।
चिताम्वे कवीवर 'चतर' पृथ्वी कियो प्रकाश ॥
गुर पवाड़ा जग सकल, वह सवही मुख याद ।
चतर देऊ मैं चौगुणा, धन तोकुं धन्यवाद ॥

कर्ता कवि —

दलपतसिंहजी नि. टोकरा
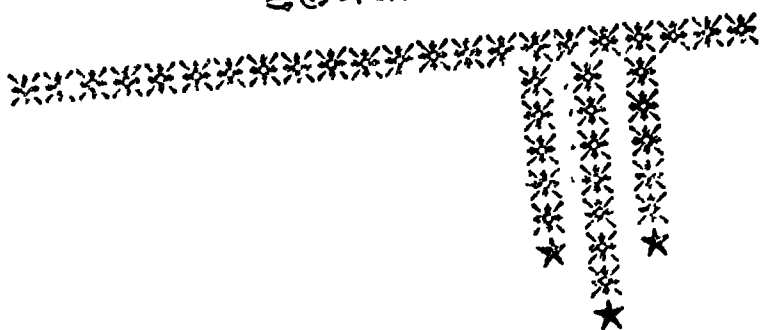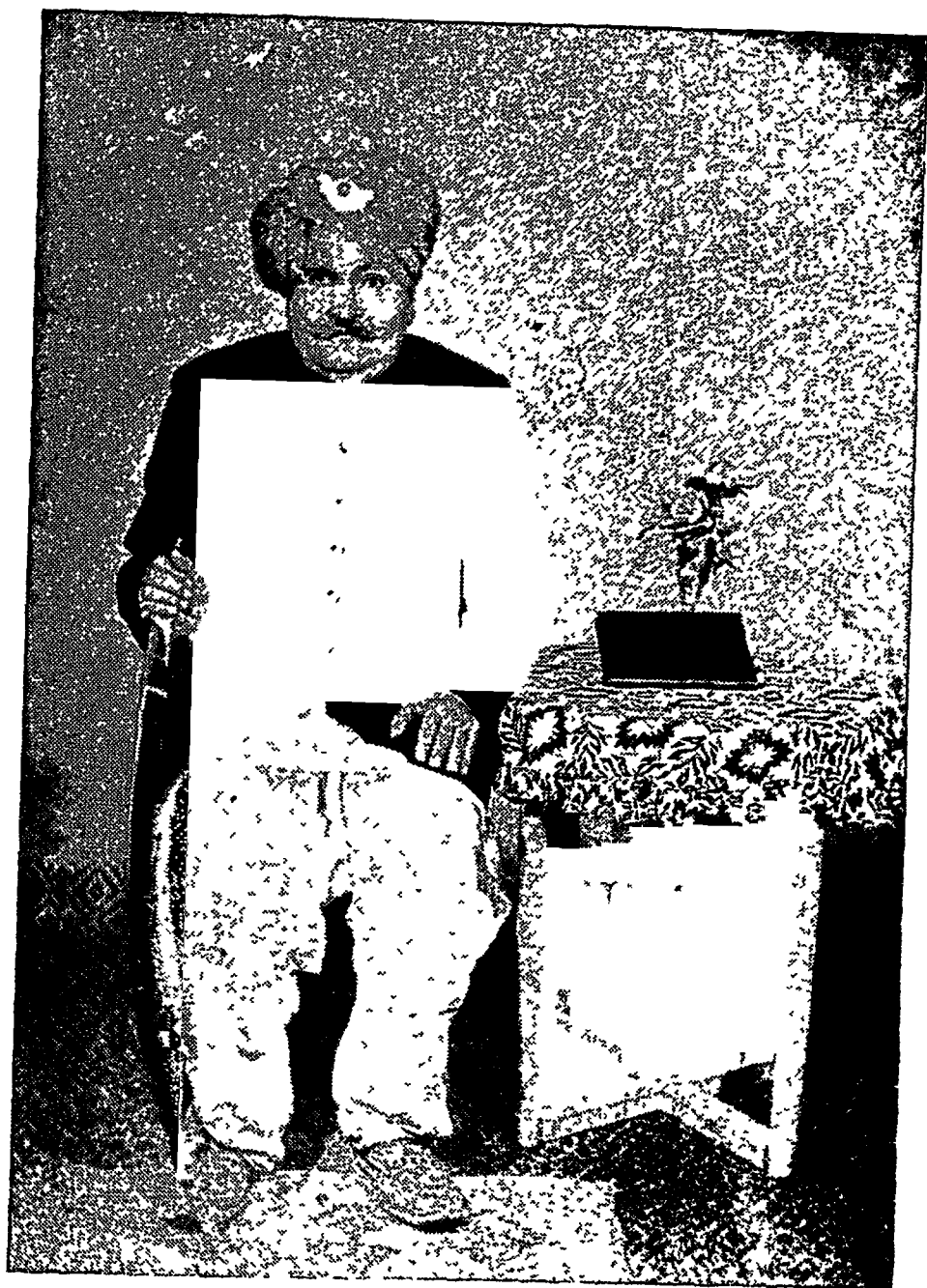
|| ॐ शिवाय नमः ||

* अथः श्री ओंकार निरूपण *

नगर दतौप निवासी कवीवर शक्तसिंहजी विरचितांम्

प्रकाशक :

बड़वाजी चतरसिंहजी निवासी चिताम्बा - मेवाड़ (राजस्थान)

प्रथमावृति – विक्रमी संवत् २०३०

★★★ अर्पण पत्रिका ★★★

:: हरि गीत ::

सम्मत उनीसे उनीस में यह ग्रन्थ आरंभ हि किया ।
अम्मर मुकट प्रभु इसका गुण गोंण इसमें भर दिया ॥
बड़वा सु उत्तम वंश में कविराज शक्तिसिंह जू ।
धरि जन्म उज्वल तन कियो दतोप पुर में दिह जू ॥१॥
कैलाशपति का यश विमल विख्यात विधिविधि से वहां ।
सार उनका सोधि के वर्णन किया मति से महा ॥
करि पाठ पढ़ि हैं नारि नर गुण विमल यश यह गावहि ।
परिवार सब पशुपति चरन सालोक्य मुक्ति पावहि ॥२॥

:: क्षमापन अर्पण ::

ज्ञाति हमारी में अधिक है वीर नर विद्वान सो ।
करि हैं क्षमा सब भूल मेरी नेक में नादान सो ॥
कह 'चत्र' मेरी मती सुक्षम धृति वंत से विनती धरु ।
ओंकार निरूपण ग्रन्थ यह में आपको अर्पण करू ॥३॥

—स्व० चतरसिंह - स्व ज्ञाति को

लेखक के दो शब्द

विद्या ददाति विनयं, विनयाद् याति पात्रताम् ।
पात्रत्वाद् धनमाप्नोति धनाद् धर्मं ततः सुखम् ।।

'विद्या से विनय प्राप्त होता है । विनय से मनुष्य को पात्रता प्राप्त होती है । पात्रता से मनुष्य धन प्राप्त कर सकता है । धन से धर्म प्राप्त होता है धर्म से सुख प्राप्त हो सकता है ।

विद्या दानात्परं दानंन भूतं न भविष्यति
विद्या दानेन दानानि नही तुल्या नि बुद्धिमन्
विद्या एव परं मन्ये यतत् पदमनायम्

विद्या से उत्तम और कोई दान नहीं है और न कोई होगा न कोई हुआ है । बुद्धिमान विद्यादान के समान दूसरा कोई भी दान नहीं है और निर्विकार सर्व श्रेष्ठ परम पद विद्या ही है ।

श्रेयश्च प्रेयश्च मनुष्य मेतः तौ संपरीत्य विविनक्ति धीरः श्रेय और प्रेय यह दोनो मनुष्य के सामने हर वक्त आता रहता है । मगर धीर मनुष्य वह दोनो की बराबर परीक्षा कर लेता है और एक मेक से अलग ज्ञान कर लेता है ।

प्राप्येमां कर्म भूमि न चरति मनुजो यस्तपो मंद भाग्यः इसी भारत

की भूमि में जन्म धारण करके जो मनुष्य अपने जीवन को सफल बनाना नहीं चाहता है। वह मनुष्य सचमुच भाग्य हीन है।

कंण्ठा भरणम्—

कविराज शक्तिसिंहजी के बनाये हुए ग्रन्थ ओंकार निरूपण लगभग एक सौ वर्ष से अप्रकाशित ज्यों का त्यो पड़ा रहा। इसके बारे में जब मेरी बाल्य अवस्था थी और मेरा अभ्यास क्रम चालु था जब कहीं कहीं ज्ञाति सम्मेलन होता था उसमें कितने ही विद्वान् पुरुष भी इकट्ठे होते थे। वहाँ पर कविराज शक्तसिंहजी का ओंकार निरूपण की कवितायें पृथक पृथक बोली जाती थी, वह काव्य बड़ी ही सुन्दर और सुनने से मन को प्रफुल्लित बना देती थी ऐसे एक ही ज्ञाति सम्मेलन नहीं मगर कितने ही ज्ञाति सम्मेलनों में इसी ओंकार निरूपण की काव्य बाबत कितने ही प्रकार की चर्चायें हुआ करती थी। कोई सज्जन कहते कि कविराज शक्तसिंहजी का ओंकार निरुपण ग्रन्थ उत्तम काव्य का नमुना है। कोई सज्जन कहते कि इस ग्रन्थ को जल्दी ही प्रकाशित करना चाहिऐ कोई सज्जन कहते कि परिपूर्ण नकल किसी के पास है ही नहीं और कोई कहते कि कविराज शक्तसिंहजी के सुपुत्र जुहारसिंहजी दतोप निवासी के पास में है।

लेकिन वह श्रीमान् किसी को देते ही नहीं और नकल कराने से भी इन्कार हो जाते हैं। जब कोई सक्ष कहते कि नकल कराने से इन्कार होने का कारण क्या है। तब उनको ऐसा उत्तर मिलता कि दस बीस या पच्चीस दिन ठहरे बिना नकल नहीं हो सकती और इतने दिन ठहरने का व्यवहारिक खर्च का बोजा किसके सिर लादा जाय। इसी प्रकार के सोच संकोच

कारण वमातः कोइ महानुभावों ने इस सिलसिले का कष्ट उठाने मे सामर्थ वान नही हो सके ।

सच है कि किसी के वहां जाकर अपना व्यवहारिक खर्च का बोज किसी के शिर लादना उचित नहिं समझा । और किसी के घर पर महमान तौर अपने कार्य के लिए जाना और अपनी गिरह का व्यवहारिक खर्च करना वह आगे वाले का तोहिन करना समझ लिया । इन संकोच वमातः कोइ भी महानुभाव इस कार्य मे सफलता प्राप्त न कर सके ।

उपरोक्त वातें मेंभी मेरी वाल्य अवस्था मे जहां तहां सुनता रहा मगर मेरे दिल ने रात दिन इस ग्रन्थ को प्राप्त करना पढ़ना सुनना सुनाना व प्रचलित करने का हर्ष वढता हि रहता था ।

लेकिन भाग्य वसात जैसेः—

सकल पदारथ है जग माही । भाग्य हीन नर पावंत नाही ।। रा-च-मा मे जहां किसी भी जगह जाता था वहां पर ग्रंथ ओंकार निरुपण के वारे में वात चीत करता । परन्तु कोइ श्रीमान उस ग्रंथ के पांच या पनरह या पच्चिम छन्द उनकी वुद्धी अनुसारेण जैसा जानते थे वैसा हि सुना देते और कहते कि हमने फला सक्सके पास से यह काव्य सिखी है । पुर्ण ग्रंथ हमारे मे नही आया हम भी विचार कर रहे है कि कहींसे यह ग्रंथ प्राप्त हो जाय तो उसके लिऐ कुछ न कुछ करे ।

इस प्रकार कि वाते हर जगह सुनने मे आति थी मगर कोई उस ग्रंथ

को प्राप्त कर प्रकाशित करने में कटिबद्ध न हो सके। मैं भी लाचार होता था और सोचता था कि एक दफे नगर दतोप जाकर कविराज के वंशजों से मिल कर के ग्रन्थ जरूर ही प्राप्त करना चाहिए। मगर उटपटांग वातों से ऐसा सुनने में आया कि कविराज के वंशज अर्थात् कुटम्बीय जन किसी को इस ग्रन्थ की नकल नहीं करने देते हैं। वह अपने मन में सोचते हैं कि किसी को यह ग्रन्थ पढने के लिए या देखने के लिए देते हैं तो उस में से कोई सक्ष पाना निकाल कर ले चला जाता है। इस प्रकार का शक होने के कारण से किसी को स्वतंत्र देते नहीं हैं और कहते हैं कि इस ग्रन्थ को पढ़ने देखने वाले बहुत से लोगों ने हंस पद निकाल लिये हैं। (हंस पद उसे कहते हैं कि लिखने में बाकी रही हुई काव्य बाद में लिख कर वह पाना बीच में रख दिया जाता है और दूसरी नकल में वह पाना सामिल जोड़ लिया जाता है) वह अब मिलना असंभव है। कारण इस प्रकार सुन कर में भी हर्ष के बजाय हतास होने लगा और सोचने लगा कि क्या करना चाहिए। किससे कहना चाहिए और किसके पास जाना चाहिए। इस ग्रन्थ को किस प्रकार प्राप्त करना चाहिए। मगर समय का परिवर्तन होता रहा। जिन्दगी जा रही है मनोरथ सिद्ध होने में अनेक प्रकार की दुविधायें आ रही है। और ग्रन्थ के बारे में कुछ भी नहीं हो पाया।

इस प्रकार की उलझन ने मेरे चित को गैर लिया लेकिन ईश्वर की इच्छा प्रबल होती है। मनुष्य कोई भी कार्य करने की उम्मेद रखता है तो भगवान उसमें सहानुभूति बनते हैं। जैसे—

जो विचार होवे मन माहीं। राम कृपा कछु दुर्लभ नाहीं। रा०च०मा०

उपरोक्त रीति अनुशारेण सहायता भी मिलती है। सचितानन्द भगवान मनुष्य के चित की उलझन को मिटाने के लिए सर्व शक्तिमान है। इसलिए ऐसी सहायता मिली कि विक्रमी संवत् २०१९ की साल कारण वसातः में जयपुर राज्य अन्तर्गत नगर आसलपुर को गया। व्यवहारिक रिवाज अनुसारेण आठ दस दिन ठहरने का मौका मिला। वहां कविराज शक्तसिंहजी के सम्बन्धियों में से कई एक व्यक्ति निवास करते हैं। विद्वान भी उसी ही ज्ञाति अन्तर्गत विराजते हैं। बड़े समझदार लायक और चतुर सज्जनता की दिव्य मूर्ती के समान देदिप्यमान शोभा को प्राप्त करने वाले। आये हुए महमानो से उत्तमता का हार्दिक प्रेमभाव को प्रगटाते हुए आसपास विराज कर उत्तम व्यवहारिक आनंद की बातें करते हैं। आये हुए महमान को वहां पर इतना आनन्द आता है कि अपने घर का सर्व सांसारिक काम को भूल कर वहां पर दो दिन ज्यादा ठहरने का दिल हो जाता है।

मैं भी वहां पर ओत प्रोत आनंद की बातें करते करते इसी ग्रन्थ ओंकार निरूपण के विषय में कुछ जानने की चेष्टा की तब उसी समय दतोप निवासी शक्तसिंहजी के सम्बन्धियों में पोत्रादिक जमाई श्रीमान् लक्ष्मणसिंहात्मज श्री उमरावसिंहजी विराजते थे उन्होंने फरमाया कि मैं कविराज के वंश में नगर दतोप में ही शादी की है और ओंकार निरूपण ग्रन्थ भी संपूर्ण लिख कर लाया हूँ। वह मेरे पास मौजूद है। प्रकाशित करने की कोशिश कर रहा हूँ मगर संजोग वसातः सफलता प्राप्त करने में देर हो ही जाती है।

मैंने श्रीमान् उमरावसिंहजी साहेब से निवेदन किया कि मैं उस ग्रन्थ का भाविक हूं। आप श्रीमान् को किसी भी प्रकार की बाधा (हरकत) नहीं

है तो उस ग्रन्थ की नकल करादेने का मैरे लिए आदेश फरमाया जावे तो आपका कोटि कोटि उपकार मैरे लिए होगा।

श्रीमान् उमरावसिंहजी ने फरमाया कि मैरे लिए उसमें किसी प्रकार की हरकत नहीं है। आप निर्विघ्नता से उसकी नकल कीजियेगा और मैरे से आप जिस प्रकार की सहायता चाहेंगे उसी प्रकार की सहायता देने में तत्पर रहूँगा। आपने फरमाया कि यह ग्रन्थ अप्रकाशित है। इसको प्रकाशित करने की हमारे हृदय में लालसा जग रही है। यदि आप भी इसमें कुछ भाग लेवें तो बहुत ही प्रशन्नता का कार्य होगा। शिव भक्त और काव्य शोखिनों के लिए यह ग्रन्थ अमूल्य रत्न है।

श्रीमान् उमरावसिंहजी साहेब को हार्दिक भाव से कोटि कोटि धन्य-वाद देता हूँ कि आपने इस ग्रन्थ की नकल करने का उत्साहिक आदेश मैरे लिए फरमाया और आशा करता हूं कि आप श्रीमान् के जीवन कार्य में सदा शिव कैलाशपति सहयोग देवे और आपकी दीर्घायु में वृद्धि करे ऐसा मैरा हार्दिक आशीर्वाद है।

तत्पश्चात् मैने मेरी सुक्षम बुद्धि अनुसारेण इस ग्रन्थ की नियम-पूर्वक नकल की और प्रेसित करने की मनोभावना प्रगट हुई जिससे प्रकाशित होने की सुविधायें प्राप्त हो।

इसके पश्चात अब इस ग्रन्थ में कविराज शक्तसिंहजी का फोटु एवम् जन्म तिथियें आदि आदि का नियत समय प्राप्त होना असंभव हो गया इसके लिए क्षमा याचना है।

(करता कवि का परिचय)

कविराज शक्तसिंहजी महान भक्त कवि वरवा (वडवा) जाति के थे। वह वरवा जाति किस जगह से प्रचलित हुई उसके लिए आगे जीवन चरित्र में भी लिखा गया है और यहां भी मत मतान्त अनुसारेण लिखना जरूरी होगा। कविराज शक्तसिंहजी अपने स्वरचित ग्रन्थ ओंकार निरूपण में अपने वंश को वडवा ही लिखा है। जैसे :—

> वरवा निज वंस विरंची वनाय; लखाय के पुस्तक पुजलियो।
> कलिमागद वंस प्रसंश कला पुष्प पाल पदाम्वुज प्रेमपियो॥

इसी वाक्य अनुसारेण अपना वंश-वडवा ही है। और अपने वंश को महागद की संतान माना है और ब्रह्मा के महायज्ञ से सुत्त महागद का प्रगट होना वताया है। मगर कविराज शक्तसिंहजी ने ग्रन्थ ब्रह्मभट प्रकाश के आधार से अपने वंश को इस प्रकार प्रगट होना जाहिर किया होगा। वाद मेरा मत तथा अन्य ग्रन्थों के आधार से ऐसा उल्लेख मिलता है कि ब्रह्मा के अत्रो रिषि हुवे उनके तीन पुत्रों में से दुतिय पुत्र वाड़व रिषि से यह वडवा जाति का उत्पन्न होना माना गया है। और उन्हीं वाड़व ऋषि के वंश में कोई महागद का उत्पन्न होना मानना चाहिए। इसी वाड़व ऋषि से अपनी उत्पति जाहिर है। इसी कारण यह जाति बड़वा अर्थात् वडवा नाम से पुकारी जाती है। यह जाति राजपूताने में विशेष प्रचलित होकर राजपूत राजा महाराजा इन्हें पूजनीक मानते हैं। इस वड़वा जाति में कविराज शक्तसिंहजी का जन्म होना सिद्ध होता है। अब शेष लिखने का कारण

इतना ही है कि मेरी क्षुद्र लेखनी को आगे बढाकर नम्र निवेदन करता हूं कि मैं किसी श्रेणी का विद्वान नहीं हूँ। न ही मैंने कोई ग्रन्थ देखे हैं न मेरा उच्च कोटी का अभ्यास है। जो भी मैंने लघु बुद्धि से इस ग्रन्थ को शुद्ध कर प्रकाशित करने की हिम्मत उठाई है उसको सज्जन गण हार्दिक भाव से अपनायेंगे और कार्य में सहयोग देने की कृपा करेंगे।

इति स्व चतुरसिंह

॥ आत्मा को उपदेश ॥

मूढ़ जहिंहीं धनागम तृष्णा कुरु सद्बुद्धि मनसि वितृष्णाम्।
थन्लभ से निज कर्मो पातं वितं तेन विनोदय चितम् ॥१॥

हे मूर्ख धन पाने की तृष्णा छोड़दे। मन में तृष्णा रहित सत्य संकलप धारण कर। अपनी मेहनत से जितना धन मिल जाय उससे अपने दिल को खुश रख।

अर्थ मनर्थ भाव्य नित्यं नास्ति ततः सुकलेश सत्यम्।
पुत्रादपि धन भाजां भीतीः सर्व त्रेशा विहिता रीतीः ॥२॥

हमेशा ख्याल रख कि धन अनर्थ का कारण है सचमुच उसमें जरा

भी सुख नहीं है। धनवानों को अपने पुत्र से भी डरना पड़ता है। सब जगह यह रीति पाई गई है।

काम क्रोध लोभ मोह त्क्त्वाऽत्मानं कोऽहम्।
आत्मज्ञान विहिना मूढास्ते पच्यन्ते नरकनि गूढाः ॥३॥

काम क्रोध लोभ मोह का त्याग करके यह सौंच कि मैं कौन हूं जिस मनुष्य को आत्म ज्ञान नहीं है वह मूढ नरक में पड़े पड़े सड़ते हैं।

त्वयि मयि चान्य त्रेको विष्णु र्व्यर्थं कुप्यसि सर्वसहिष्णु।
मर्त्रं स्मिन्नापि पश्चात मानं सर्वत्रो त्सृज भेदाज्ञानं ॥४॥

तुझ में मुझ में और दूसरों में सब कुछ सहने वाला एक ही विष्णु है। फिर भी तू नाहक गुस्सा करता है तूं सब में आत्मा ही को देख और भेद भाव रूपी अज्ञान को छोड़ दे।

नलि नीदलगत सलिलं तरलं तद्वज्जी वित मतिशय चपलं।
विद्धि व्याद्धभिमान ग्रस्तं लोकं सोक हतंच समस्तम् ॥५॥

कमल के पत्ते पर पड़े हुए पानी की तरह जीवन बहुत ही चंचल है। तूं यह समझले कि यह सारा संसार व्याधि अभिमान और शोक से ग्रस्त है।

—द्वादश पंजरिका स्तोत्र से

:: भूमिका ::

जटा जूट लट मुकट शिर सोहे सुभग गल व्याल ।
सो महेश उमा सहित करहूँ सहाय कृपाल ।।

—चतर कवि

श्रीमन् कविराज शक्तसिंहजी जिला जयपुर ठिकाना डिग्गी के निकट दतोप ग्राम के निवासी थे और उनके पिताजी का नाम मालमसिंहजी था । वह ब्रह्म भट्ट वरवा जाति के थे और उनका कार्यक्रम क्षत्रिय वंशोत्पति आदि का इतिहास सुनाने व नवीन कुलोत्पन्न इतिहास लिखने का था ।

यह है कि इस जाति को राजस्थान में बड़वा नाम से ही पुकारते हैं जिसका अर्थ ऐसा होता है कि अपने कुल के बडाओं की वंशावलि सुनाना व लिखना । इसलिए इन जाति को मेवाड़ाधीश महाराणाओं ने वड़वा नामक उपाद्धि इनाईत की गई । इसी कारण से राजस्थान में रहने वाले क्षत्रिय अगर दूसरी कोमों भी इनको बड़वा अर्थात् वरवा नाम से ही पहिचानने लगी इनकी विशेष संख्या राजस्थान में ही प्रचलित है वरना दूसरे देशों में वंशावलि लिखने और सुनाने वाले को भट्ट या राव नाम से पुकारे जाते हैं । वह जाति इनसे पृथक है । दूसरा इसी तरह जोधपुर मारवाड़ के महाराजाओं ने इनको राव की उपाद्धि इनाईत की थी इसलिए राजस्थान मारवाड़ आदि में इनको रावजी अर्थात् वड़वाजी शब्द से ही पहिचानते हैं ।

मगर इतना जानना चाहिए कि राव जाती व भट्ट जाती इन वड़वा जाती से पृथक है नहीं समझने वाले देश रिवाज अनुसारेण एक ही नाम से पुकार लेते हैं। यह उनकी अपरिचयता का कारण है।

श्रीमान् कविराज शक्तसिंहजी उपरोक्त निवासी राजस्थान के प्रसिद्ध कवि थे और उसी वड़वा जाती में ही उनका जन्म हुआ था। आप राजस्थान के प्रसिद्ध नीति एवं धार्मिक कवि थे। स्वस्थान ठिकाना डिग्गी के श्रीमान् ठाकुर साहब भीमसिंहजी के राज्य कवि एवं हुरजीदानों में थे। राज श्री ठाकुर साहब भीमसिंहजी के समय अनुसार घटनाओं में आप कविराज का पूर्ण हाथ रहता था। राज श्री ठाकुर साहेब कविराज शक्तसिंहजी को आठों याम एवं चौबीस ही घन्टा अपने ही पास रखते थे। और उनकी अनुमति लिए विना ठिकाना डिग्गी का कोई कार्य नहीं होता था। इसी से ज्ञात होता है कि कविराज राजनीतिज्ञ पुरुष थे। संसार के व्यवहारों में तथा ज्ञान आदि के वाद विवादों में एवं धार्मिक चर्चाओं में खास ठाकुर साहेब इन्हीं को ही आगे रखते थे।

कहते हैं एक मरतबा राज श्री ठाकुर साहेब भीमसिंहजी को अपनी तलवार से केशरी सिंह का शिकार करने का शौक हो गया। कविराज को पूछने पर सहानुभूति से कविराज ने कहा कि धनोप माताजी के वहां चलना चाहिए। उसी स्थल में उभय नदिओं का संगम होता है और वहां पर जंगल आदि भी खूब है। इसलिए आप ठाकुर साहेब वहीं पर चलने की सवारी तैयार करावें। ईश्वर की इच्छा से वहीं पर शेर का शिकार तलवार से होगा। इस प्रकार कविराज का कथन सुन कर ठाकुर साहेब भीमसिंहजी

ने अपनी सेना दल बल के साथ सजा कर कविराज को भी संग लिए उसी स्थल में पहुंचे और विश्राम के लिए डेरा दे दिया गया बाद जगत जननी अम्बा धनोप माताजी तथा दूसरे देवी देवताओं के दर्शन करके अपने स्व शरीर को पवित्र किया।

कहते हैं कि दो दिन तक डेरा रहने पर भी शेर देखने में नहीं आया शिकारी मनुष्य चारों दिशा जंगलों में घूमते रहे मगर कहीं भी शेर की खोज न मिली शिकारी वीरों ने वापिस लोट कर ठाकुर साहेब से अर्ज किया कि हमें इन जंगलों में दो रोज तपास करते बीत चुके मगर कहीं पर भी शेर के पेर का पता नहीं लगता। अब क्या किया जाय जैसी श्री हजूर की मरजी। इस प्रकार अपने अनुचरो के वाक्य सुन कर स्वयंम ठाकुर साहेब ने कविराज शक्तसिंहजी को फरमाया कि आप ही के वचन पर आधार रख कर यहां आने की कोशीश की गई और शेर कहीं पर मालुम नहीं होता है। क्या स्वयम् आपही का वचन मिथ्या जायगा।

इस प्रकार ठाकुर साहेब का कहना सुन कर कविराज शक्तसिंहजी उठ खड़े हुए। संध्या आरती का समय नजदीक हो आया था। उसी समय महाराजा धन्धुमार की स्थापित की हुई महारानी धनोप देवी के मन्दिर में आप कविराज पधारे। स्तुति वंदन आदि के बाद अपना कार्य करने के हेतु निम्नलिखित गीत तैयार करके देवी को सुनाया वह इस प्रकार है—

गीत— आँसाँ दी आपने अरज आखू असी,
जोय दाखुँ जसी जाण जग मांय।

शरण हूँ राज रे सदा ही शंकरी.
उगत मों अंकरी समापो आप ॥
निरंजणि निर्मल अंग विमल वाला,
वयण ठयण दल दाण ठोर ठाई ।
अमर अज आपरे आसरे आविया,
गाविया बिड़दरी किरती वाई ॥
सामली शणक में भणक भूता तणी,
.... भारी ।
सिताबी सिंह सिणगारियो समर कर,
डमर पे कर घुमर कर......डंक डारी ॥
भचक लेबा उटी भूतडाँ भंजणी,
रंजणी रंगीली रटक राची ।
गटकवा रुद्र अरु पिशण दल पटकवा,
झटकवा झाट मद माट माची ॥
खडग खयर खलकाय होगी खड़ी,
अड़ि अनडां भडा आण अग्गा ।
पिशण दल पृथ्वी पर पड़िया पलक में,
ललक में लोथडां जाण लग्गा ॥
झटकगी झाट मु पटक झटका किया,
कटक कड़काविया क्रोध काली ।
दड़ा जिम द्रोह वणो शीश दड़काविया,
समर नटकाविया सिंघ वाली ॥

महवा आपरा आगमति आंखड़ा,
वाखड़ा उजेलो मों हाकड़ा बिरद वाली ।
फलेइत फबेरा फवे तो फाँकडा,
उजेलो मो ऑकड़ा उगत वाली ॥

उपरोक्त प्रकार देवी की स्तुती करके कविराज अपने डेरे में आकर रात को तम्बु में सो गये । बाद महानिशायाम देवी ने कविराज को स्वप्नवत दर्शन देकर कहा कि सवेरे होने ही ठाकुर साहेब की समशेर से सिंह का शिकार हो जायगा ठाकुर साहेब को निम्न प्रकार सूचित कर देना ।

स्वप्नवत देवी का दर्शन कर कविराज चौंक उठे और जगदम्बा के गुणानुवाद गाते गाते ही प्रातसूः काल हो गया और श्रीमान् ठाकुर साहब भीमसिंहजी के पास जाकर देवी से वरदान प्राप्त करने का एवं आज तलवार से सिंह का शिकार होना सचमुच अर्ज कर दिया । कविराज बोले सो निम्न प्रकार है —

दोहा— भीम भार तेरो भग्यो, देवी दे वरदान ।
आज निशा मधि आय के कही कछुक मो कान ॥

सवैया — आज निशा सुख सोय रहे सुच मात कही इत आय कहानी ।
नृप जाय कहो मन धीर धरें मनु आज हुवे मन की मनमानी ।
मात करी सुत्र ज्ञात तुमें अब सोच करो किम हो अगवानी ।
मात कहा मन सूरति की शकनेम सुनावत है मत ज्ञानी ।

यह है कि उसी रोज सिंह की शिकार श्रीमान ठाकुर साहब भीमसिंह जी ने तलवार से करके अपनी भुजाओं के बल का पुरुषार्थ दिखाया। मतलब यह हुआ कि उसी रोज सिंह का दिखाई पड़ना और अपनी तलवार से सिंह मारा जाना यह सर्व प्रभाव कविराज शक्तसिंहजी की दैविक शक्ति का परिचय ही समझ लिया जावे। इस प्रकार कविराज वाक्य सिद्ध थे ऐसा प्रतीत होता हैं। विशेष वृतान्त यह है कि कविराज देवी और ओंकारेश्वर शंकर के अन्यन्य परम भक्त थे। उनकी बनाई हुई काव्य शैली से सही सही ज्ञात हो जाता है।

ठिकाना डिग्गी के निकट ग्राम दतोप कविराज का जन्म स्थान था। अपने ग्राम में भी इनका सब सद् ग्रहस्थों में इनको उच्च कोटि का मान मिलता था और इनको सब ग्राम वाले गृहस्थ वचन सिद्ध यानी पशुपति के परम भक्त मानते थे। सिवाय आसपास के गांवों में कविराज को पूर्ण मान मिलता था। इनकी जाति वाले भी इनको पूर्ण प्रेम की दृष्टि का पियुष पिलाते थे और कवि आभूषण के नाम से इनको प्रकाशित करते थे। उन्होंने अपनी काव्य शैली की धारा को बहा कर कई ग्रन्थ लिख कर अपनी बुद्धि को उज्वल बनाने की प्रसंशा पाई थी उनने श्री ओंकार निरूपण नामक ग्रन्थ रच कर अति उत्तम काव्य का नमूना संसार को दिखाया है। देखने से ज्ञात होता है कि काव्य की झड झमक शब्द की रचना एवं अक्षर सगाई इत्यादि के नमूने इकट्ठे कर ग्रन्थ को चमत्कारिक प्रकाशित कर दिया है। कविराज ने इसमें संस्कृत शब्द पिंगल के साथ कहीं कहीं डिंगल का भी प्रयोग किया है ऐसा मालूम पड़ता हैं।

श्री कविराज शक्तसिंहजी कैसे और किस श्रेणी के कवि थे जिस की प्रसंशा में श्रीमान् ठाकुर साहब श्री मुलतानसिंहजी अलीपुर जिला सहारनपुर कवि सम्राट ने अपने यहां कवि शक्तसिंहजी पधारे तब उन्होंने फरमाया कि हमें आज पृथ्वीराज वाले कवि एक नहीं बल्कि चार चंद मिल गये हैं। और कविराज की प्रसंशा में एक नवीन काव्य बना करके सुनाया सो निम्न प्रकार है।

सवैया :— संम्मत साल सतावन भावन जेष्ठ बुद्धि दुतिया तिथी आई।
चन्द जु चार जिसे शकतेश अशेष भइ सब से रुचि राई॥
मान महान सदा मन नदद है मुलतान कहा कहूं ज्ञान दुवाई।
बन्श सु बन्श प्रसंशु साचशु बांचित राव दिये दर साई।

उपरोक्त काव्य श्रीमान् ठाकुर साहेब मुलतानसिंहजी कवि सम्राट ने अपने उज्वल सुमुख से कविराज शक्तसिंहजी को सुना कर सन्माना था विक्रमी सम्मत १९५७ माशे जेष्ठ कृष्ण दुतिया के दिन।

और भी कविराज की प्रसंशा के कई प्रमाण है। लिखने से बहुत बढ़ जाता है मैं भी मेरी मति अनुसार कवि की प्रसंशा में एक दोहा लिखता हूँ वह इस प्रकार है।

दोहा — अधिक अलंकृत आगरो विमल ही बुद्धि विशेष।
नवरस कविता खान निज सरस कवि सकतेश॥ चन्द्र कवि

इसी प्रकार कविराज को राजस्थान में अति उत्तम श्रेष्ट कवि विद्वान लोगों ने माने है। कविराज की विशाल बुद्धि अति उज्वल थी।

अहंभाव को कभी उन्होने अपने उर नही आने दिया था सो उन्ही के प्रमाणित शब्दों से साबित हो जाता है।

कविराज शक्तसिहजी का जन्म विक्रमी संवत् १८८२ के मास कार्तिक शुक्ला द्वितीया सोमवार को हुआ था। आप बचपन में ही होनहार संस्कारी मालूम पड़ते थे। लडकपन में इनको पढ़ने की कोई सुविधा न मिल सकी। ग्रामीण पाठशाला खानगी में विद्या अभ्यास करते रहे परन्तु उससे कोई योग्यता प्राप्त न होने पाई। साक्षात अक्षर ज्ञान होना जरूरी था। बाद पूर्व रीणानु बंधन महात्मा श्रीमान् पंडित श्री श्रीचंदजी संस्कृत शास्त्रीजी नगर झराणा निवासी से भेट हुई। शास्त्रीजी ने इस कवि बालक को पूर्व से ही होनहार समझ लिया। बाल कवि के शरीरांकित शुभ लक्षण को देखते ही मन में आनन्द की सीमा उमड़ आई एवं तत्पश्चात् बाल कवि की हस्तरेखा पर सामोद्रिक ज्ञान से विद्या रेख दिखाई पड़ते ही शास्त्रीजी के सुहृदय में आनंद उछल आया जैसे — होनहार बलवान। ललाट पटलं लिखितं विधाता। इसी प्रकार होना समझ शास्त्रीजी ने कविराज को अपना शिष्य बना कर विद्या अध्यन कराना शुरु कर दिया। स्वयम् शास्त्रीजी श्रीचंदजी अच्छे विद्वान थे। उसी कारण उन्होंने शक्तसिहजी को वेद वेदांग श्रुति स्मृति उपनिषध योग आदि का अभ्यास थोड़े ही दिनों में प्राप्त करा दिया। कविराज होनहार बुद्धि के चतुर थे। गुरु अपनी विद्या प्राप्त करवाने में अति प्रवीण थे। दोनों होनहार एक से सम्मिलित हो गये। अब कहना ही तो क्या था, किसी प्रकार की न्यूनता न रहने पाई।

इसी प्रकार बाईसवें वर्ष कविराज अति उत्तम श्रेणी के विद्वान माने गये और काव्य शक्ति का कलाप भी बढ़ गया। इनके चमत्कारिक काव्य राजस्थान में प्रख्यात होने लगे। आप कविराज नीति व धार्मिक नीति के कवि थे इसलिये उन्होंने अन्य कविता नहीं रच कर ईश्वर सम्बंधी काव्य लिखना ही सार समझ लिया। इनके स्वरचित कई ग्रंथ राजस्थान में अप्रकाशित हैं। उनमें से अति उत्तम श्री ओंकार निरूपण नामक ग्रंथ प्रकाशित करने के लिए कई ऐक व्यक्ति तैयार हुए मगर लाभ मिलने वाले को ही मिलता है।

कविराज शक्तसिंहजी ने इस ग्रन्थ का नाम ओंकार निरूपण रखा जो इसलिए कि ओंकारेश्वर शंकर की यात्रा पुरी का दिग्दर्शन यानि देखना कोई भी व्यवित इस ग्रन्थ को पूर्ण रूप से पढ़े तो उन्होंने ओंकारेश्वर की यात्रा करली, मानो कवि ने तनिक मात्र भी किसी चीज की न्यूनता नहीं रखी है ग्रंथ देखने पर सही प्रतीत हो जाता है। इसी कारण वसातः इस ग्रंथ का नाम ओंकार निरूपण रखा गया है। यथा नामा तथा गुणां।

ओंकार पुरी में जैसी मंदिरो की शोभा तथा मुरति के श्रृंगार एवं आरती स्तुती तत्पश्चात् नदी नर्बदा का बहाव बंके टेढ़े पर्वतों के दृश्य, सुन्दर कानन की शोभा, खग मृग विहंग पक्षियों का कलरव, मयूरों के झिंकार, नर्बदा के जल प्रवाह की किलकिलाहट व विष्णुपुरी व ब्रह्मपुरी, अर्थात् कैलाशपुरी का अनोखा उत्तम वर्णन, अपनी काव्य की अपूर्व छटा से किया है। काव्य आदि के कितने ही ग्रंथ संसार में

होते हुए भी इस ग्रंथ की काव्य छटा अनुपम है। जिसको कविराज शक्तसिहजी ने अपनी उज्वल बुद्धि को खिला कर अनुपम काव्य रस इसी ग्रंथ में भर कर अपना जीवन का उद्धार किया और संसार के शिव भक्तों को भक्ति रस का पियूस पिलाया।

आशा है कि इस ग्रंथ को पूर्ण रूप से कोई शिव भक्त पाठ करने में या पढ़ने में समर्थ बने तो निशदेह निर्णय है कि वह आखिर इस संसार को असार समझ कर पशुपति के पदाम्बुज में कैलाश पहुंच जाता है। इसमें कोई शक नही। खूब ही शिव भक्ति का कवि ने चितार करके संसार को दिखाया है।

॥ भक्त कवि और सन्त एक ही वस्तु है ॥

ईश्वर के अन्यन भक्त और सन्त तथा कवि में कोई अन्तर नही कविवर शक्तसिहजी एक कवि ही नही थे वरना शंकर के परम भक्त सन्त कवि माने गये हैं। इसी विषय में शास्त्रों का प्रमाण है कि कवि और सन्त में कोई अन्तर नही माना जाता है। जैसे श्री नगेन्द्रनाथ चक्रवर्ती एम० ए० लिखते हैं कि सन्त और कवि में एक ही भाव और एक ही रूप दिखाई देता है उसी का सिद्धान्त इस प्रकार है।

मानव हृदय परमात्मा से मिलने के लिये सदा व्याकुल रहता है। अपने हृदय की तीव्र ज्वाला को शान्त करने के लिए मनुष्य ने कभी प्रकृति की कोमल निव्रता और सम्भ्रमोत्पादक ऐश्वर्य पर और कभी अपने ही सुख दुख, मानापमान एवं आशा निराशा पर दृष्टिपात किया

उसने इन पर विचार किया। इनका निरीक्षण किया। इनके रहस्य को समझने का यत्न किया और कुछ हद तक इसमें सफलता प्राप्त की। रहस्योद्घाटन अथवा अनंत की खोज के यह दो मार्ग काव्य और धर्म अर्थात् सौंदर्य और सत्य के नाम से अभिहित हुए है।

जैसे सन्तलोग तत्वदर्शी और कवि सौन्दर्यनवेशी होते हैं। परंतु सत्य और सौंदर्य एक ही वस्तु के दो पहलू हैं। और इन दोनों का साक्षात्कार भावावेष तथा जिज्ञासा पूर्ण श्रद्धा की अवस्था में होता है। इस प्रकार कवि और सन्त का जीवन एक ही प्रकार के दृश्यों को देखते हैं जिनसे निरंतर आनन्द की वर्षा होती है। जो सर्व साधारण की बुद्धि से परे है और जिन्हे देख कर मनुष्य मुग्ध और चकित हो जाता हैं। वह सब जीवों में आनंद और अनंतता का अनुभव करते हैं। आनंद रूपम् मृतं यद्विभाति। वे किसी अपरिचित लोक का संगीत सुनते हैं। जहां सौंदर्य और सत्य अपना द्वार खोल कर अनेक कोमल भावों के साथ मनुष्य के अन्तरात्मा में प्रवेश कर जाते हैं। वहां समता और समष्टि बुद्धि के अतिरिक्त क्षुद्र अहं बुद्धि के लिए स्थान ही नहीं है। कवि और संत दोनों ही भाव राज्य में बिचरते हैं। वह हमारी उच्च भावनाओं को जागृत कर हमें इस पार्थीव जगत से उपर ले जाते हैं। भगवान् को शास्त्रों में रस रूप कहा गया है। रसो वैसः। उस रस रूप आत्मा तथा परमात्मा के प्रति किसी रस विशेष का अबाध रूप में अनुभव करने से ही उस महान् वस्तु की प्राप्ती हो सकती। महान् आलोचक लाञ्जीनस का कहना है – हमारी आत्मा किसी महान वस्तु

के सम्पर्क से अपने आप स्वभाविक ही उपर उठ जाती है और आनंदातिरेक से भर कर मानों नाचने लगती है। इसी रस की अनुभूति और व्याख्या जब सन्तों द्वारा होती है तब उसे प्रेम कहते हैं और जब कवियों द्वारा होती है तब उसका नाम साहित्य हो जाता है। सार्वभोम एवं अलौकिक प्रेम तथा शुद्ध साहित्य के मूल में जो यह परमार्थिक एकता है। उसकी ओर प्राचीन ऋषियों और आलोचकों का ध्यान न गया सो बात नहीं हैं। वैदिक ऋषियों ने कवि को तत्वदर्शी परमात्मा का संदेश वाहक तथा वृक्ष एवं लताओं को अनुप्राणित करने वाले जीवन रस से पूर्ण अविज्ञ बताया है।

धूतः कविरसि प्रचेताः महद्ब्रह्म वदिष्यति...येन प्राणंति वीरुधः।

मम्मट विश्वनाथ आदि प्राचीन आलोचकों ने कवि के लिए नियति कृत नियम रहितः विधाता के बनाये हुवे नियमों से परे। इत्यादि विशेषणों का प्रयोग किया है। और नवरस रुचिराम् इस पद में उन्होने सान्त को रस की कोटी में स्वीकार किया है और अन्त में रूप गोस्वामी ने अपने उज्वल नीलमणी ग्रंथ में सख्य दास्य वात्सल्य माधुर्य और शान्त इन पांच सम्बन्धों को जिन्हे जीवात्मा परमात्मा के साथ स्थापित करता है। रस के अन्तर्गत माना है। यह भी निर्विवाद सिद्ध हैं कि वैदिक काल से लेकर अब तक के विचारों एवं भावों के विकास में भक्ति का अंग जितना ही प्रबल रहा उतनी ही अधिक स्पूर्ती साहित्यिक क्षेत्र में भी रही हैं।

वैदिक काल में प्राकृतिक दृश्यों एवं घटनाओं के रूप में ईश्वरीय

विभूति का दर्शन करने से मनुष्य के ह्रदय में जिन दिव्य एवं अलौकिक भावों का संचार हुआ उनका ऐसी सुन्दर कविता में वर्णन हुआ है। जैसी कविता आज तक जगत में लिखी नही गई वैदिक साहित्य में भी कवि शब्द का प्रयोग क्रान्तदर्शी के अर्थ में हुआ हैं। क्रान्तदर्शी उसे कहते हैं जो अपने स्थान पर बैठा हुआ किसी दूर स्थित वस्तु के रहस्य को जान सकता है अर्थात् जो किसी दूर देश में बैठा हुआ यहां की वस्तुओं को देख सकता है।

अमुत्र सन्निह वेत्थतेः संस्तानि पश्यसि।

अर्थात् जिसने यावन्मात्र पदार्थों को सब ओर से जान लिया है। जिसकी सभी लोकों में अबाधित गती है और जो प्रत्येक लोक में निर्बाध रूप में व्यापार कर सकता है। वैदिक काल से इन्ही क्रान्तदर्शी कवियों अर्थात् मंत्र द्रष्टा ऋषियों को उनके वंशजों ने सर्वोच्च कोटि के सन्तों के रूप में स्वीकार किया। सब पहलुओं पर विचार करके वेद में साधु उसी को बताया गया कि जिसने सत्य का पता लगा लिया हो।

ऋतस्य पंन्थानम न्वेति साधुः (ऋग्वेद १२४।३।)

इस प्रकार इस विश्व का असली रूप जानने की इच्छा वाले कवि के लिए यह आवश्यक है कि वह संत भी हो और संत के लिए यह आवश्यक है कि वह कवि भी हो।

इसी तरह कवि और संत दोनों को परमात्मा ने मानों यह आज्ञा दी है कि तुम भूमा की उपासना के द्वारा आत्म बोध की प्राप्ती करो।

कवि को कहा कि तुम साहित्य में चित्रण कला और संगीत का उद्-घाटन कर इस लक्ष्य को सिद्ध करो और संत से कहा कि तुम श्रद्धा प्रेम और लोक सेवा के द्वारा इसी लक्ष्य को प्राप्त करो। कवि के जीवन का उद्देश्य इतना ही नहीं है कि वह केवल शब्द को सुन्दर आलंकारिक ढंग से सजा दे अर्थात् किसी भावों के ढांचे को ही बदल दे उनका कर्तव्य यह भी है कि वह लोगों की जीवन पद्धति रहन सहन तथा रीति-रिवाज को बदल दे और धर्म आचार राजनीति एवं राष्ट्रीयत के सम्बन्ध में उनके विचारों को पलट दे। बंगाल के एक कवि ने भी कहा है – वही लेखक अर्थात् कलाकार कवि कहला सकता है जो अपने देश के झरोखे का काम देता है अर्थात् जिसके विचारों से हमें उस समय के सारे समाज की स्थिति का पता लग जाय जो लेखक मनुष्य की हृदयतंत्री को बजा सकता है वह तो कवि से भी उपर है। उसे तो तत्वदर्शी ऋषि ही कहना चाहिये। देखिये रामायण कथा का का उपोदघात। उपनिषधों में भी कवि का लक्षण इस प्रकार किया गया है। छन्दों योगान विजानाति अर्थात् जो छन्दों के प्रयोग के साथ सार्थ-मनुष्य के छन्द अर्थात् छिद्रत भावों को भी भली भांति जानता है। इस प्रकार अति प्राचीन काल से लेकर अब तक मनुष्य के छिद्रत भावों को और विचारों को प्रगट करने का साधन छन्द अर्थात् काव्य ही रहा है।

ज्ञान और विज्ञान के सब से पुराने भंडार छंद में ही निबंध हैं। क्योंकि जेस्पर्शन के शब्दों में काव्य हमारे अंतस्थल को स्पर्श कर जाता

एवं दिव्य अनुभवों की विपुल राशि को तथा अपनी शाब्दिक रचनाओं को अपनी भावी संतान को देकर चिरकाल तक उन्ही के सहारे जीवित रह सकते हैं। उनकी यह सम्पति देश और काल की सीमा को लांघ कर अनन्त में मिल जाना चाहती है। प्राचीन काल के इन सन्तों को अर्थात् कवियों को उनकी साधना के अनुसार हम ज्ञान योगी कर्म योगी अर्थात् भक्ति योगी कह सकते हैं। इस प्रसंग में हम महाप्रभुजी श्री चेतन्यदेव के पूर्ववर्ती कतिपय बंग देशीय संतों के दिव्य चरित्रों और शाब्दिक रचनाओं का उल्लेख किये बिना नही रह सकते।

इसलिए सबसे पहले गीत गोविन्द कार जयदेव कवि का नाम याद आता है। ये कवि होने के साथ ही साथ उच्च कोटि के सन्त एवं भगवद्भक्त थे इनके सम्बन्ध में यह कथा प्रचलित है कि भगवान श्री कृष्ण ने स्वयम् इनके काव्य की पूर्ती की थी। इनकी अमर कृति गीत गोविन्द का आज भी वैष्णव समाज में बड़ा आदर है। यहां तक कि जगन्नाथपुरी में तो जब तक गीत गोविन्द का पाठ नही कर लिया जाता तब तक भगवान निलाचल नाथ की पूजा अधूरी ही समझी जाती है। जयदेव कवि के बाद चन्डीदास नाम के एक और सन्त कवि हुए जिन्होंने बंगला भाषा में पद रचना की। इनके पदों का महाप्रभु चैतन्यदेव पर तो इतना प्रभाव पड़ा कि उन्ही को पढ कर इनके मन में भगवान से मिलने की तीव्र उत्कंठा जागृत हो गई। कवि चण्डी दास शक्ति उपासक थे और अपनी इष्ट देवी वांशुली के चरणो में उनकी अचल भक्ति थी। बंगाल के रूप सनातन एवं जीव गोस्वामी

जो तीनों के तीनों वृन्दावन में रहने लग गये थे, अपनी भक्ति एवं भक्ति विषयक ग्रंथों के लिए प्रसिद्ध हैं। इनमें से रूप गोस्वामी के विदग्ध माधव एवं ललित माधव नाम के दो नाटक उज्वल नीलमणी नामक अलंकार का ग्रंथ तथा भक्ति रसामृत सिन्धु नाटक चन्द्रिका और दान के लिए कौमुदी नामक अन्य ग्रंथ भी मिलते हैं जिनसे इनकी उच्च आध्यात्मिक स्थिति एवं अलौकिक कवित्व शक्ति का पता लगता है। रस परिपाक के द्वारा परिछिन्न जीव का अपरिछिन्न भगवान के साथ किस प्रकार अद्वैत हो जाता है इसका इनके ग्रन्थों में बड़ा अच्छा वर्णन है। इनके बड़े भाई सनातन गोस्वामी बहुत बड़े कवि और महात्मा हो गये। इन्होंने भी हरि भक्ति विलास नामक एक संस्कृत का अनुपम ग्रंथ लिखा था किन्तु लोग कहते हैं कि इनके रचियता गोपाल भट्ट थे। रूप सनातन के भतीजे जीव गोस्वामी ने रूप गोस्वामी के ग्रंथों पर टीकायें लिखी और खट् संदर्भ गोपाल चम्पु आदि कई स्वतंत्र ग्रंथ भी लिखे हैं।

अंत में हम महाप्रभु चैतन्य देव के सम्बन्ध में कुछ लिख कर इस निबन्ध को समाप्त करेंगे। यह गोडीय वैष्णव सम्प्रदाय के प्रवर्तक एवं आध्य आचार्य थे। उन्होंने बंगाल जातीय एवं सामाजिक जीवन की धारा को ही पलट दिया और उसे धर्म एवं भक्ति की ओर प्रवाहित कर दिया। इग्लेन्ड के महान् कवि मिल्टन ने कहा है कि कवि और सन्त का जीवन एक ही काव्य और पहली है। और महाप्रभु श्री चैतन्य देव के सम्बन्ध में श्रीयुत् दिनेशचन्द्र सेन ने लिखा है -कि उनके

है। वह सशयात्माओं के ह्रिदय में भी हलचल पैदा कर देता है क्योंकि वह ऋषियों महात्माओं और कवियो के परिपक्व अंतकरण की चरम अभिलाषा को राम मय रूप देदेता है।

उपनिषदों के अलोकिक सिद्धांतों को भी जिसके आगे चल कर दार्शनो के रूप में कई शाषा प्रशाषाऐं हो गई संनत कुमार शाडिल्य एवं नारदादि ऋषियों ने काव्य की भाषा में ही रक्खा यह सारा विश्व ब्रह्म का ही रूप है और आत्मा ही ब्रह्म है – छन्दोज्ञ – ३।१४। अन्तर में रहने वाले व्यापक ब्रह्म का यह स्वरूप वास्तव में अनुपम है। प्राचीन भारत के इन सन्तो एवं क्रांतदर्शी कवियों की प्रसंशा में डाक्टर विगृनींज कहते हैं – भारत के इन प्राचीन तत्ववेताओं ने जिस सच्चाई और तत्परता के साथ परमात्मा तत्व की जिसे पाश्चात्य दार्शनिक केण्ण ने स्वतः सिद्ध वस्तु (Thing in Iiself) कहा है – एक मेवाद्वितियम्ः सत् अर्थात् आत्मा के नाम से खोज की है। यह वास्तव में हमारे लिये बड़े ही आदर की वस्तु है। इस प्रकार संतों ने अपने दार्शनिक काव्यों मे मानव ह्रदय की अनादि कालीन जिज्ञासा का बड़े ओजस्वी शब्दों में वर्णन किया है और (Sehopenhaner) नामक आलोचक ने अपने (Pareigaund Patalipomena) नामक ग्रंथ में उपनिषदों के सम्बन्ध में लिखा है कि काव्य जगत में उपनिषदों के समान आत्मा को उन्नत करने वाला और शांति प्रदान करने वाला कोई दूसरा ग्रंथ नहीं है। मुझे जीवन में इससे बड़ी शांति मिली हैं और मृत्यु के समय में भी इन्ही से शान्ति मिलेगी।

भारत में एक परमात्मा की उपासना के बाद कालान्तर में अनेक देवताओं की उपासना प्रचलित हो गई इस बीच में भिन्न भिन्न युगों के कवियो और सन्तो ने भिन्न भिन्न अधिकारियों के लिए ज्ञान योग कर्म योग और भक्ति योग की अलग अलग व्यवस्था की। जब उन्होंने देखा कि उनकी वाणी सहज में जनता के कानों तक नहीं पहुंचती तब उन्होंने साहित्य की शरण ली और इतिहास पुराणों के रूप में काव्य को अपने उपदेश का साधन बनाया और व्यास नारद और याज्ञवल्यक्य आदि मुनियों ने कविता में ईश्वरीय तत्व को भर दिया। एक विद्वान ने कुर्म पुराण का संपादन करते हुए उपोदघात में लिखा हैं कि पुराण हिन्दुओं के धार्मिक साहित्य का एक बहुत महत्वपूर्ण अंग है। पुराण धर्म शास्त्र और तन्त्र ग्रंथो का हिन्दुओं के जीवन पर अब भी बहुत वड़ा प्रभाव है। उनके सारे धार्मिक कृत्य उन्ही के आधार पर होते हैं। यह सर्व कवि लोगों की कला मानली जाय इन इतिहास पुराणों में भगवद गीता जो महाभारत के अन्तर्गत और भागवत का चाहे इनको रचियता एक रहे हो या अलग अलग जनता पर बहुत अधिक प्रभाव रहा है। इनको सर्वाधिक लोकप्रिय होने का एक कारण यह भी रहा है कि इन दोनों ही ग्रन्थों का काव्य की दृष्टि से वहुत उँचा स्थान हैं। इनकी भाषा वड़ी प्राजल अलंकारिक और औजस्वनी हैं। इनके भाव वड़े दिव्य और साक्षात् भगवान तथा महात्माओं के ह्लदय से निकले हैं।

ऋषियों और क्रान्तदर्शी कवियों के अन्दर साधारण जनता की अपेक्षा एक विशेप गुण यह होता है कि वह दोनों ही अपने अध्यात्मिक

भावावेष उनके उपदेशों तथा उनके आध्यात्मिक भावों का जनता पर किसी भी महा काव्य से अधिक प्रभाव पड़ता था। क्योंकि उनके शब्द मानों वेद की ऋचाये थी उनके पदों में काव्य की उत्कृष्ट छटा देखने को मिलती थी और उनके भगवत्साक्षात्कार तथा प्रेम समाधि का वृतान्त किसी भी महा काव्य के लिए गौरव की सामग्री हो सकता है।

इस प्रकार हम देखते हैं कि संसार के सभी तेजस्वी पुरुष विश्व भर में आनन्द की किरणे फैला देते हैं और आनन्द में ही जीवन का अजश्र बहता रहता है।

कोह्य वान्यात् कः प्राण्यात् यदेष आकास आनंदो न स्यात्
ये नाहं नामृता स्यां किमहं तेन कुर्याम्।

सत्य और सौंदर्य की खोज ही सभी देशों और सभी युगों के सन्तों और कवियों का उद्देश्य रहा है। उन्होंने जीवन भर परिश्रम करके और नाना प्रकार के कष्ट सह कर इसी सत्य की खोज की। और इसी सिद्धान्त की संसार में स्थापना की। ये लोग अपने ह्रदय में भगवान के दिव्य धाम से बन्शी की ध्वनी सुना करते है। बंगाल के प्रसिद्ध बाउल संत चांदकाजी ने गाया है :-

नदी के उस पार से खड़े होकर तुम अपनी बांसुरी बजावो और मै इस पार खड़ा रह कर उसकी सुमधुर ध्वनी को सुनु। ऐ प्रियतम् क्या तुम जानते नही हो कि मैं अभागिनी तैरना नही जानती। मैं बंशी

के नाद को सुन कर व्याकुल हो रही हूं। मुझे श्री हरि के दर्शन किये विना जी करके भी क्या करना है।

वैदिक कवियों ने भी अपने हृदय में इसी बन्शी ध्वनी को सुन कर गाया था।

असतो मा सद्‌गमय तमसोमा ज्योतिर्गमय मृत्योर्मा मृतं गमया। मुझे असत् से सत् में लें जावो अंधकार से प्रकाश में ले जावो और मृत्यु से अमृत्व में ले जावो।

इस प्रकार संत कवि होते हैं और कवि संत होते हैं। क्योंकि दोनों ही अपने हृदय के अनूप रत्न को प्राप्त करने के लिए नाम रूप के अगाध सागर में गोता लगाते हैं।

रूप सागरे डूब दिये छि अरूप रतन पाव बले।

उपरोक्त उदाहरण से पाया जाता है कि कवि और संत एक ही वस्तु है। इसी प्रकार कविराज शक्तसिहजो (बरवाजी) उत्तम नमूने के कवि रत्न थे। उन्होंमें भक्ति एवं ईश्वरीय भाव इस प्रकार भरा हुआ था कि उसको जानने के लिए उन्ही का बनाया हुआ ओंकार निरूपण नामक ग्रंथ देखने से ज्ञात होता है। विशेष उत्तम भक्ति एवं उच्च भाव उन्ही के निर्मल तन में परिपूर्ण स्थापित जन्म समय से ही हो गया होगा और कविराज शक्तसिहजी सनातन धर्म अनुशारेण अखिल विश्व पति शंकर ओंकारेश्वर एवं पारब्रह्म परमात्मा रामचन्द्र भगवान के अन्यन्य उपासक परमभक्त थे।

बाद इस भारत भूमि में अनादि काल से अनेक कवि रत्न होगये हैं। वह कैसे और किस प्रकार के माने गये थे उनका थोड़ा सा दिग्दर्शन कराना उचित समझ कर कवियों के विषय में कुछ परिचय देना जरूरी होगा। जैसे – कविर्म निषी परिभूः स्वयम्भूः – इशोपनिषद् –

साणोत्कीर्ण मिवोज्ज्वलं द्युतिदं बन्धोऽर्ध नारी –
श्वरश्लाघा लंड छन जाडि चको दिधीलतो द्विरनेव वार्थोदन्तिः
किञ्चिन्त्पीड़ित चन्द्र मण्डल गलत्पीयूष हृद्यो रसः
तत्कोञ्चित्कवि कर्म मर्म न पुनर्वा ग्डिण्डिमा डम्बर

भारतवर्ष काव्य का भंडार है भारत भूमि में काव्य शक्ति अंतिम सीमा पर्यन्त पहुँच गई थी। देवताओ का अद्भुत कार्य और गान्धर्वो की रसिक क्रीड़ाओं तथा ऋषियों का वैज्ञानिक और धार्मिक उपदेश एवं मनुष्यों को त्रिविध प्रकार के ऐश्वर्य जनक कर्तव्य यह सर्व विषय कवियों की कवित्व शक्ति का ही महत्व प्रगट करता है।

जैसे आदि कवि वालिमकजी भारतवर्ष के कविवरों की पंक्ति में प्रथम श्रेणी के श्रेष्ठ सन्त कवि माने गये है। जिन्होंने प्रथम रामायण का नाम जगत् मात्र के जीवों के श्रवणों तक पहुंचाया बाद भी श्रीकृष्ण द्वैपायन (वेदव्यास) स्वयम् सन्त कवि अंसावतार माने गये हैं। अठारह पुराण एवं एक लक्ष महाभारत का लाभ उन्होंने इस संसार को अर्पण किया।

महा कवि श्री कालीदास अपनी महान काव्य शक्ति को बहा

कर जगत में प्रकाश प्रगट कर दिया है। जिनके अलोकिक दिव्य ग्रंथ कई विध्यमान हैं जिनमें मोर्यवंशी विक्रम चरित्र तथा अभिः ज्ञान शकुन्तला नामक ग्रंथ अद्‌भुत अलंकारिक छटा वाला है। बाद श्री भारवो कवि जितने महान व्याकरण ग्रंथ (अर्जुन किरात) नामक बना कर अपनी उज्वल काव्य धारा को दिपाया है फिर भी देखो श्री हर्ष वर्धन कवि ये कन्नोज के महाराजा थे और ईस्वी सन् ६०६ में कन्नोज को राज्यगादी पर विराजे थे। यह अपूर्व विद्वान कवि थे और उन्होंने अपनी उज्वल काव्य शेली से तीन ग्रंथ को रचना की थी। रत्नावली, नागानन्द, प्रियदर्शिका, यह तीनों ग्रंथ इन्हीं के बनाये हुए हैं। बाद राजऋषी कवि भरतृहरिजी वह सुन्दर कृति वाले रस सिद्ध कविश्वर सबसे उत्तम शोभा पाकर यश रूपी अपने शरीर को जरा और मरण से होने वाले भय से मिटा दिया है। उसके बाद कविश्वर (बाण) कथा कादम्बरी और हर्ष चरित्र नामक ग्रंथ को बनाने वाले हो गये। जैसे फिर भी भवभूति नाम के कवि सबसे प्रसिद्ध है। श्री विसाखदत्त नामक महान् कवि भारत में पाये जाते हैं जिन्होंने मुद्रा राक्षस नामक ग्रंथ लिखा है। वैसे ही श्री माघ नामक कवि संत हो गये हैं जिन्होंने शिशुपाल वध नामक अपूर्व पुस्तक लिखी है। बाद राजशेखर भक्त कवि सुनने में आते हैं। उन्होंने बाल रामायण, विद्धशाल मन्जिका, कर्पूर मन्जरी बाल भारत नामक चार ग्रन्थ लिखे हैं जिसे पढ़ कर जग की विभूति का ज्ञान प्राप्त कर दिया है। ऐसे कवि फिर भी श्री मुरारी दामोदर मिश्र श्री दन्डी जिसने दश कुमार चरित्र नामक ग्रंथ लिखा था। और कवि जयदेव गीत गोविन्द के रचियता महान् प्रसिद्ध

हो गये हैं । बाद में श्री कवि हर्ष जिन्होंने नैषिधिय चरित्र नामक ग्रंथ लिखा है । इस प्रकार अनेक कवि सन्त व्याकरण एवं संस्कृत ग्रन्थों के रचियता प्रबल इस भूमि में पाये जाते हैं । तत्पश्चात् भाषा निबन्ध को प्रगट करने वाले प्राकृत कवि अपनी उत्तम् काव्य श्रेणी का विस्तार कर महान् जगत को प्रकाशित बनाया है । उनकी प्रसंशा में जितना लिखा जाय एवं लिखा गया उनता ही कम होगा जैसे कवि चन्द बिरदाई अपने बनाये हुए पृथ्वीराज रासे में आठसौ वर्ष पूर्व का राजनैतिक एवं संसार के सर्व व्योहारों का निरीक्षण करा दिया है । यह भी परम भक्त देवी उपासक कवि रत्न थे । बाद परम भक्त कवि सूरदार अपने इष्टदेव श्री कृष्ण भगवान की श्रृन्गारिक काव्य कला को बहा कर उसमें अपनी अन्यन्य भक्ति का मार्ग जगत को दिखा दिया है । साथ ही मणीमय रत्नों की माला बनाने वाले भक्त माल ग्रन्थ के कवि नाभाजी परम भक्त कवि हो गये हैं जिनकी प्रसंशा में जितना लिखा जावे उतना कम होता है । विशेष श्री गोस्वामी तुलसीदासजी का जन्म सबसे अधिक मान्यप्रद है । जिन्होंने अपनी सुन्दर काव्य-भक्ति से संसार को अद्भुत आनंद प्राप्त कराया हैं । उन्होंने स्वरचित राम चरित्र मानस (रामायण) का प्रख्यात अति उत्तम सुधारस भक्ति के साथ इस असार संसार को पान कराने का परिश्रम उठा कर अपनी भक्ति मय काव्य को अति उच्च पद स्थापित करा दिया है । साथ ही लिखना जरूरी है कि महात्मा कवि कबीरजी भी उत्तम उच्च श्रेणी के महान् संत एवं भक्त कवि थे । जिन्होंने सर्व धर्मो का सार ग्रहण करके अपनी उत्तम काव्य श्रेणी को गिरी श्रृगो से बहती हुई विष्णु पदि के अनुसार

संसार में वहा कर धार्मिक वाणी का प्रचार सारे विश्व को दिखाया है।

इसके अतिरिक्त कवि गिरधरदास एवं विहारीदास व सतीसाध्वी महान मीरा बाई एवं भक्त कवि ईश्वरदास (इश्वरा के परमेश्वरा) कहलाते थे। ऐसे विश्व में अजोड़ कवि सन्त हो गये हैं।

साथ हो कवि गंग अर्थात् अवतार चरित्र के रचियता भक्त कवि नरहरिदासजी जिन्होंने चौबीस अवतारों रूपी तरंगो को अपनी सागर समान काव्य शेली में स्थापित कर संसार के कुन्तिम जीवो का मनोरथ सिद्ध कर दिया है। और भी कवि संत केशवदास बीकानेर राजस्थान के महाराजा कविश्वर पृथ्वीराजसिंहजी एवं कवि पदमाकर वगेरह इस भारत भूमि में प्रसिद्ध सम्राट कवि संत दिखाई देते हुए अपनी अति उज्वल काव्य धारा को वहा कर धार्मिक एवं नीति और भक्ति का अपूर्व मार्ग प्रगट करते हुए सारे विश्व (यह भारत) को पवित्र पद का स्थान प्राप्त कराया है।

इसी तरह कविराज शक्तसिंहजी भी महान उच्च श्रेणी के अपूर्व विद्वान सन्त और भक्त कवि थे। उन्होंमें तत्व ज्ञान परिपूर्ण भरा था। आप संस्कृत के पूर्ण ज्ञाता थे मगर भाषा काव्य को ही अपने मन से उत्तम समझते थे।

भाषा काव्य के लिए भारत के विख्यात विद्वानों ने इस प्रकार लिखा है। जैसे भारत का साहित्य का तीन युग माना जाना स्वयंम् सिद्ध होता है अर्थात् वेद युग एवं श्रुति युग संस्कृत युग अर्थात् स्मृति

युग भाषा युग अर्थात् सन्तो की तथा कवियों की भाषा काव्य एवं भाषा वाणी वेदिक युग में अपने प्राचीन ऋषियों ने मनुष्य संस्कृति के आरंभ से ईश्वर सम्बन्धी जो ज्ञान अपने अन्तर में सुना और उसका दिग्दर्शन किया वह संहिता ब्राह्मण ग्रंथ और उपनिषध में भक्ति कर्म और ज्ञान की अखण्ड त्रिवेणी में प्रगट हुआ। यह परम ज्ञान का आन्तरिक चिन्तन अपने ब्रह्म ऋषियों एवं राज ऋषियों ने बनवास में और यज्ञ शाला में और राज महलों में रह कर के किया है। वैदिक युग का समय ईस्वी सन् पूर्व पांच एवं छः हजार वर्ष से लेकर ईस्वी सन् पूर्व पन्द्रह सौ वर्ष तक माना गया है।

संस्कृत युग में अपने ऋषि मुनियों ने श्रुति के स्मरण रूप में जिस ग्रंथ को रचा है उसको स्मृति कहते हैं। इस स्मृति में धर्म सूत्र एवं दर्शन सूत्र रामायण महाभारत आदि इतिहास पुराणों का समावेश किया गया है। उसी समय वैदिक धर्म की व्यवस्था करने में आई और उसी काल के दरम्यान रचे हुए धर्म ग्रंथों को प्रमाणिक मानने का स्वीकार किया जाता है। इस संस्कृत युग का समय ईस्वी सन् पूर्व एक हजार से लेकर ईस्वी सन् के दसवी शदी के तक का माना जाता है बाद ईस्वी सन् के तेरहवे और चौदहवे सतक से भाषा की काव्य रचने का स्थान प्राप्त हुआ है। कवि और संत एवं भक्तों की सिद्धि और सरल एवं प्रेरक भाषा काव्य वाणी में भी श्रुति और स्मृति में निवास करते हुए धार्मिक-उद्गार देश की अलग अलग भाषाओं में अखंड प्रवाह रूप प्रकट होता है। और संस्कृत को न समझने वाले अनेक सामान्य मनुष्यों

के हृदय में रहे हुए धार्मिक चैतन्य को हिला डालते हैं और रस की लहरें उमड़ जाती है। इस प्रकार की यह भाषा साहित्य का आरंभ ईस्वी सन् तेरहवें चौदहवें सतक से ही सर्वत्र भाषा निबन्ध स्थापित हुआ है।

अपने देश के इतिहास में ऐसा भाषा युग संस्कृत में भी आगे दो दफे प्रचलित हुआ था मगर जमाना संस्कृत युग का था इस लिए भाषा युग पूर्ण रूप से साम्राज्य नही पा सका आज छःसौं एवं सातसौं वर्ष से बिल्कुल भाषा युग का साम्रज्य है यह नवीन भाषा युग सारें समस्त देश में अधिपत्य पा गया है।

किसी कवि ने भाषा युग के विषय में फरमाया है, दोहा—

भाषा शाषा है सही संस्कृत सोही मूल।
मूल रहत है धूलि में शाषा में फल फूल॥

अपनी भारतीय भाषा के मूल संस्कृत होने से अपने प्राचीन भारतीय भाषा पर संस्कृत की प्रवल छाप पड़ी हुई मालुम देती है आगे वेद युग से लेकर संस्कृत युग के अन्त तक संस्कृत साहित्य के अनेक अंग एक महा वृक्ष फला फूला था और इसके शब्दार्थ राशी बहुत विस्तार पर पहुंच गया था।

अब मात्र संस्कृत जानने वाले विद्वान ही इस विशाल एवं समृध साहित्य को पूर्ववत व्यवस्थित कर सके ऐसी स्थिति शक्य नही थी। क्योंकि उन्होंकी बुद्धि इस विस्तार को देख कर रुक जाने वाली थी।

इसलिए अगतिकताओं ने संस्कृत नही जानने वाले सामान्य जीवों के शिर पर अपनी संस्कृति को प्रदीप झगमगते रखने के हेतु आना समझ कर उन्होंने देश काल एवं परिस्थिति के अनुकूल हो सके ऐसा अच्छी रीति से सिद्ध कर दिया और इस सामान्य मनुष्यों में से कितनेक धर्मात्माओ एवं सन्त कवियों आदि ने संस्कृति का थोड़ा सा अमूल्य तत्वों को पंकड़ लिया और मनुष्योक्त वाणी एवं भाषा काव्य में सखलन कर गुथ कर मनुष्य के घर के द्वार तक पहुंचा दिया।

प्राचीन भारती कवियों की कृतियों में धर्म एवं तत्वज्ञान की अन्तिम भूमिका और सिद्धान्तों मुर्तीवंत होकर लोकिक जीवन में ओंत प्रोत बन गया और अपने कितनेक प्राचीन हिन्दी कवियों ने थोड़ा सा फेर फार करके संस्कृत साहित्य में से महत्व के ग्रंथों का अनुवाद किया है। संस्कृत साहित्य का परिपूर्ण पान करके उसी में से चाहिये जैसी वस्तु को प्राप्त कर स्वकल्पना से भारतीपन से भरपूर ऐसा सुन्दर काव्यों के ग्रंथ रच कर अपनी काव्यशेली को उत्तम दिपा दिया है।

हिन्द की प्रतिभा कलानिष्ट है और उसने, उसका साहित्य की अन्यन्य साधारणता है। प्रत्येक कवि एवं साहित्य सर्जक अपनी विशिष्ट कला मय भाषा मे धर्म एवं तत्व ज्ञान और इतिहास आदि का परम सत्य प्रगट कर दिखाया है।

उपरोक्त महत्व के कारण ही कविराज शक्तसिंहजी ने भी अपने ग्रंथ ओंकार निरूपण की रचना भाषा काव्य में ही की और

पुराणो का शंकर भगवान ओंकारेश्वर का चरित्र महात्म्य अपनी रची हुई भाषा काव्य में भर कर भावी भक्तों के लिए इस संसार में प्रकाशित किया अ: परम विद्वान एवं भक्त कवि थे और सर्व देवी देवताओं को प्रशन्नोचित हार्दिक भाव से मानते थे। इसमें सन्देह नही है। कारण कि स्वरचित ओंकार निरूपण को पढने से ज्ञात होता है कि किसी भी देवी देवताओं का स्थान पुरी ओंकारेश्वर में स्थापित है। उन्होंकी उन्होंने स्वमुख से स्तुति और वंदन अपने ग्रंथ में वर्णन कर दिखाया हैं। इसलिये समझना चाहिए कि आप एक शंकर भगवान के ही भक्त नहीं थे बलिक सभी देवों को सारूप समझ कर, अपना उत्तम हार्दिक भाव प्रकट किया है।

कहते हैं कि आप कविराज को कितने ही मर्तबा श्री ओंकारेश्वर भगवान रूबरू साक्षातकार करा कर उनकी आन्तरिक उपाधियों से निवृत बनाये थे और कविराज अपना ग्रंथ लिख रहे थे उस समय श्री शंकर भगवान ने आपोआप अपना रूप दिखा कर कविराज शक्तसिंहजो को सम्बोधित किया कि यदि आप अपनी पुस्तक में श्री नारायण राम चन्द्र मरियादा पुरुषोतम का यश वर्णन करोगे तो मैं तुम्हारे उपर अत्यन्त प्रसन्न रहूँगा और आप मेरी ही भक्ति कर रहे है ऐसा मान लिया जायगा। इन्ही कारण व सात: कविराज शक्तसिंहजो ने स्व: रचित ग्रन्थ में रामचरित्र रामचरित मानस रामायण का सुन्दर ढंग से भाषा काव्य में वर्णन किया अर्थात् श्री वद्री विहार का वर्णन किया फिर भी इसके अलावा कल्याण कोर्ती नामक काव्य अति उत्तम प्रकार

से अपने रखे हुए ग्रंथ में स्थापित की हुई दिखाई देती है।

यह ग्रंथ ओंकार निरूपण इसको पढने से मालूम होता है कि कविराज की काव्य शक्ति अति उत्तम मनोहर मन को रंजन करने वाली भाषा काव्यों में श्रेष्ठ मानने योग्य है। ऐसा विद्वानों का सहानुमत साबित होता है। और सत्य भी वास्तविक है। काव्य पद छन्दों के विस्तार कवित्त दोहा चौपाई छपय आदि की शोभा अलौकिक पाई जाकर उनमें अक्षर मेल एवं शब्द सगाई अर्थात् वर्ण सगाई मात्रा मेल आदि से सुशोभित है। खास खास ओपमा अलंकारों से भरपूर खिली हुई दोष रहित है जिसमें जाति भंग एवं पुनरोक्ति दोष न होकर झड झमक की धारा बांध दी गई है। इन कविराज की काव्य का खास महत्व तो यह है कि झड स्वर अक्षरों की आवृति शब्द की झमक व वर्णों की आवृत्ति आदि से सजी हुई काव्य किसी दूसरे ग्रन्थों की कृतियों से निराली मालुम होती है। काव्य अभ्यासियों के लिए काव्यादि ग्रन्थों में इस प्रकार लिखा है कि पिंगल आदि के पाठ पढ़े बिना ही कोई काव्य करना चाहे एवं व्याकरण के नही जानते हुए भी काव्य रचना चाहे तो रच सकता है मगर उसकी वाणी विमल नही हो सकती है। इसलिये विद्वानों ये कहा है कि व्याकरण एवं पिंगल आदि को पढ करके ही काव्य रचने का प्रयास करना चाहिये जिससे नियम का कोई दोष नही पाया जाकर उत्तम काव्य का पद प्राप्त कर सकता है।

काव्य यह चीज है कि मानों जैसे कल्पना अच्छे से अच्छे रसिक

शब्दों में कोई भी कवि अर्थ की रचना ले आता है तो वह काव्य किसी प्रकार के मनुष्य का मन को रंजन बना देती है। इसी तरह काव्य रचने की अनोखी खूबी होती है।

ऐसी अर्थो एवं अलंकार सहित काव्य कवि संत शक्तसिंहजी ने अपने बनाये हुए पुस्तक ओंकार निरूपण में काव्य रूपी माला के मोती चुन चुन के साहित्य काव्य के अभ्यासी एवं शौकीन जीवों को अत्योतम् फोटू दिखाया है।

इसलिए ऐसी सुशोभित भाषा काव्य लिखने वाले अजोड़ कवि राज को कोटि कोटि धन्यवाद दिया जाता है और उनका नाम ही मात्र कल्याणकारी बिर संसार में अमर पद पाने का सौभाग्य प्राप्त किया है। समझना चाहिये कि लगभग यह ग्रंथ आसरे एकसौ वर्ष से प्रेषित अभाव से एक ही जगह पड़ा रहा। कदापि ऐसा नहीं बनता और पचासेक वर्ष पहले जल्दी प्रकाशित हो जाता तो शिव भक्तों एवं काव्य के उत्साही मनुष्यों के विश्राम गृहों के पालने (हिंडोले में) सुन्दर बालक की भांति झूल जाता इसमें कोई संशय नही है।

कविराज शक्तसिंहजी उपरोक्त रीति अनुसारेण महान् ईश्वर भक्त और सन्त कवि माने गये हैं। उनके लिए जितना लिखा जाय उतना ही कम होगा। परन्तु मैने उनके जीवन चरित्र के लिए जितना वृतान्त जाना उतना ही सही सही लिखा है। इसमें किसी प्रकार की विशेष अति सयोक्ति नही है।

लिखना जरूरी होगा कि विद्वानों की शक्ति एवं संत भक्तों की शक्ति अपूर्व और उनमें गुण भी अपूर्व है। उनका कोई भी कार्य असराहनीय नही हो सकता वरना उनका सर्वप्रसंग कार्य प्रसंशनीय योग्य है।

आशा है कि मैंने जो कुछ मेरी क्षुद्र बुद्धि से इस अघाध ग्रंथ ओंकार निरूपण को शुद्ध करके प्रकाशित करने का अवसर प्राप्त किया है उसको श्री उत्तम विद्वजन अपनाने की अवश्य कृपा करेंगे और उसमें कोई अक्षर, शब्द, मात्रा, ह्रस्व, दीर्घ आदि दोप की त्रुटिये जरूर होगी तो सज्जनगण मेरी मन्द बुद्धि की अवेहलना न करते हुए क्षमा प्रदान करेंगे जगत में विद्वानों की तुलना बहुत उच्च कोटि में सम्मिलित है। मैं क्षुद्र जीव उनमें से कोई भी तुलना के पात्र नही हूं। पतंग सूर्य की बराबरी नहीं कर सकता। मैंने मेरी कर लेखनी को क्षुद्र समझ के ही वृथा परिश्रम उठाने की कोशीश की है। मगर जैसे बालक तुतली वाणी से कुछ भी बोलता रहता है परन्तु उनके माता पिता अति उत्साह से सुन कर आनन्द मानते हैं।

चौपाई– निज कवित केहि लागन नीका-सरस होऊ अथवा अति फीका।

महात्मा कवि शक्तसिंहजी की प्रसंशा में जो कुछ भी लिखना है वह अघाद समुद्र को पार करना है लेकिन जहाज रूपी उज्वल बुद्धि के बिना पार होना असंभव है। श्री ओंकारेश्वर की कृपा के विना शिव भक्तों के प्रसंशनीय गुणों का वर्णन करना यह कठिनता का कार्य है।

–स्व चतरसिंह, चिताम्वा (मेवाड़)

—०❀ प्रथम वंदना ❀०—

विनायकं गुरुं भानुं ब्रह्म विष्णु महेश्वरान् ।
सरस्वती प्रणोम्यादौ सर्व कार्यार्थ सिद्धय ॥

सर्व कार्य की सिद्धि करने के लिए प्रथम गणेश गुरु सुर्य ब्रह्मा विष्णु शिव और सरस्वती देवी को मै प्रणाम करता हूँ कि मेरे गुरु किये हुए कार्य को यह साथ ही देवी देवता तात्कालिक विघ्न रहित सम्पूर्ण होने में सहाय करेंगे ।

॥ ॐ पर ब्रह्म को नमस्कार ॥

ॐकार विन्दु संयुक्तं नित्यं ध्यायंन्ति योगिनः ।
कामदं मोक्षदं चैव ॐकाराय नमो नमः ॥

योगी मनुष्य विन्दु सहित ॐकार का सदा ध्यान धरते हैं और वह ध्यान सर्व कामना को सिद्ध करता है । अतः मोक्ष पद को देने वाला है । इसलिए यह ॐकार शब्द पर ब्रह्म को मेरा नमस्कार हो नमस्कार हो ।

॥ ईश्वर से प्रार्थना ॥

योऽन्तः प्रविश्य मम वाच मिमां प्रसुप्ताम् ।
संजीव यत्य खिलश वितधरः स्वधाम्ना ॥
अन्याश्च हस्त चरण त्वगा दीन् ।
प्राणान्नमो भगवते पुरुषाय तुभ्यम् ॥

हे सर्व शक्तिमान ईश्वर तूं मेरे हृदय में रहता है अपने तेज से तूं मेरी सूती हुई वाणी को जगाता है और मेरे हाथ पांव कान त्वचा वगैरह दूसरे प्राणों में प्राण भर देता है। ऐ प्रभु ऐसे भगवान को मेरा हजारों नमस्कार हो।

॥ गुरु रूप ब्रह्म को नमस्कार ॥

गुरु ब्रह्मा गुरु विष्णु गुरु देंवो महेश्वरा।
गुरु साक्षात्परं ब्रह्म तस्मे श्री गुरु वे नमः॥

गुरु ही ब्रह्मा है गुरु ही सर्व व्यापक विष्णु भगवान है गुरु ही महादेव है इतना ही नही मगर ज्ञान के देने वाले खास ही गुरु साक्षात परब्रह्म है उसी गुरु को मै नमस्कार करता हूं।

॥ गुरु वंदना ॥

ब्रह्मानंद परम सुखदं केवलं ज्ञान मूर्ति।
द्वंद्वातीतं गगन सद्रष्यं तत्व मस्यादि लक्ष्यम्
ऐकं नित्यं विमल मचलं सर्वद्धि साक्षि भूतं
भवातीतं त्रिगुण रहितं सद्गुरुं नमामि॥

ब्रह्म का आनन्द रूप अपने शिष्य को परम सुख देने वाले केवल एक ज्ञान की मूर्ति रूप सुख दुःख के जोड़े से रहित आकाश जैसे निर्लेप और गंभीर तत्वमशी महा वाक्यों का लक्षाअर्थ रूप केवल स्वरूप नित्य

निर्मल और अचल सर्वो की बुद्धि के साक्षी रूप सर्व भावनाओं से मुक्त बने हुए और तीनो गुणों से रहित ऐसे सद्गुरु को मै नमस्कार करता करता हूं। (प्रात स्मर्ण से)

॥ प्रभु भक्तों का स्मरण ॥

प्रहलाद नारद पराशर पुण्डरीक
व्यासाम्वरीक शुक शौनक भिष्म दाल्भ्यान्
रुखमांगदार्जुन वसिष्ट विभिषणा दीन्
पुण्यानिमान्परम भागवता न्स्मरामि ॥

पाण्डव, प्रहलाद, नारद, पराशर, पुण्डरीक, व्यास, अम्वरीक, शुक, सौनक, भीष्म, दाल्भ्य, रुक्मांगद, अर्जुन, वशिष्ट, विभीषण आदि भगवान के परम पवित्र भक्तों का मैं स्मरण करता हूं। (पाण्डव गीता)

स्व चतरसिंह

❀ अथ: श्री ओंकार निरूपण ❀

विरचित कविवर शक्तसिंहजी निवासी दतोप तावे डिग्गी स्टेट ढुंढार

॥ श्री गणेशाय नमः ॥

अष्टक श्लोक (ओंकारेश्वर वंदना)

बन्दे ब्रह्मान्ड बिस्तीरणं पूरितं परमं सुखं ।
मन्डितं भाल बालेन्दु देवाऽधीश दिगंम्बर ॥१॥
त्राहि माम् त्रिगुण रूपं विरूपं विश्व बोधितं ।
नमस्तुभ्यं निरंकारं ऊँकारंम्खिलेश्वरं ॥२॥

(दोहा गणेश वंदना)

दुरद बदन सुखमा सदन, मदन क्रान्ति रद नेक ।
वक्र तून्ड बुद्धी विमल, अरपित सिद्धि अनेक ॥

(छपय छन्द)

पद घुंघर रून झुनत सुनत धुनि विघन विनासत ।
पिताम्बर तन पुलकि शीश सिन्दूर प्रकासित ॥
वक्र तुन्ड गज बदन सेदन श्रुति मदन क्रान्ति हर ।
लम्बोदर वरदाय फर्स कर चक्र दक्ष धर ॥

चितमति उदार दातार अति मोदक प्रिय रिद्धि सिद्धि रचित।
शक्तेश विनय सुनि कीजिये ऊँकार गुन हिये उदित ॥१॥

(शारदा सुमिरण दोहा)

जयति जननि जगदम्बीका, स्वरस्ती सुमित समूद्र ।
हंसासन हिये तिम हरन, अगम निगम निज ऊद्र ॥२॥

(चौपाई)

जय शारद श्रुति मती रती श्रेनी, देव दनुज नर रुचि वर देनी।
रमा रहत निरखत रुचिराई, सुच सिवा सोभा सकुचाई ॥१॥
अणिमादिक आनन अभिलाखे, रेन चरन सिरनव निधीं राखे।
सुवरण तें तन अमित सुहावन पिताम्बर पुलकित पट पावन ॥२॥
मुक्ती माल हियरे मुलकंती, झलमिल श्रुति कुन्डल झलकंती।
आनन चतुर इन्दु उजियारे, पंकज द्रग मृघ मीन पुंवारे ॥३॥
कीर तुन्ड नाशिका नवीनी, भृकुंटी मदन धनुष गती भीनी।
मृघ मद बिन्दु ललाट मनोहर, अली सुत मनहुं इन्दु उर उपर ॥४॥
नग मनि जटित मुकट सिर नीको, होत उदय जनु दिनकर हिको।
हंसासनि वाहनी हरि हिय की, जानत सकल जनन के जिय की ॥५॥
हरनि कुमति गती कोह द्रोह को, धरनि सुमती रती मुकती छोहकी।
जननि चरन कमलनि बलि जांउ, पारवती पती को गुन पाउं ॥६॥

(दोहा)

महिमा शारद मात की गुन शहसा नन गूढ़।
किम वरने सकतेश कवि मूढ़ अज्ञ आरूढ़ ॥३॥

(क्षमापन)

गुनदायक सरी चन्द्र गुरु तिही पदरजहि प्रणम्म ।
उही प्रसाद मम उर उदित गूढ छन्द कछु गम्म ॥४॥
सकल सुजन पद्र शरण ग्रही मती गली कविता मोद ।
सुक्षम बरन्यो युक्ति सम वृषभा रूढ विनोद ॥५॥

(कवि वंश वर्णन)

नाग शयन निज नाभितें, निरज प्रगट नवीन ।
अज निरज तें प्रगट भये, कलि विचित्रता कीन ॥६॥

(छप्पय छन्द)

अह्म विस्व विस्तार वंश हूं रचे विचक्षण ।
प्रगटे तिनते पूत्र सूत म्हागद शुभ लक्षण ।
वेद चतुर मुख ब्रिन्च शास्त्र खट सूत स्मरपे ।
वंश अंस बडवार पाप लिखी म्हागद अरपे ।
प्रार्थना कीन प्रिती सहित दुर्गा बुद्धी वरदान दिये ।
बैठार पाट विधि विष्नु शिव त्री देवन मिल तिलक किये ॥२॥

(दोहा)

बरनत वाही वंश को, बहुत ग्रंथ बढि जाय ।
सुक्षम मति सकतेश कवि उपज्यो तिहि कुल आय॥७॥
बहु साखिन ते बासबर, नगर दतोप निधान ।
प्रथम पुरखन पाईयो, महीपालन तें मान ॥८॥

धीर धरमशी देवसी, कगु पाल किस पाल ।
उधरण गोलुसी गुनी, भूपन के भिडियाल ॥९॥
करहत लाला खग दलि, पुनरमल वल पूर ।
जिन दुरजन दल दमन किय, निडर सिघली नूर ॥१०॥
तिहि ते देद दलेल भये, ख्योंधर तुलसी राम ।
सिम्भू राम सालम सुभर, सुमरे सिव सर नाम ॥११॥
सुत भये मालम सिंघ के, सिव गुलाम सकलेश ।
ताहि ईस अपनाय के, काटे सकल कलेश ॥१२॥
अनुवर करि ऊँकार तहि, दरश दया कर दीन ।
अपनो गुन अनुसार उर, कविता तिन ये कीन ॥१३॥

(सूचना छन्द सुन्दरी)

नाम यह ओंकार निरूपन, भाल मयंक धराशन भूकन ।
जो सुनि है,गुनि है यह ग्रंथ ही,प्रीत उमापति के पद पंथही ॥१॥
ताहि दिगंम्बर की छवि दिसत, श्री ओंकारपुरी परशि युत ।
जा चित सम्भु पदाम्बुज चावही,ताहि सदा यह ग्रंथ सुनावही ॥२॥
मानव शंकर द्रोह मई मती, वे सुन याही करे अप कीरती ।
सम्मत दे द्दगपाल ग्रहे सत, उपर साल वोही गन अधभुत ॥३॥
भाद्रव कृप्न पखी तिथ पूरन, मोचित लागि पदाम्बुज मूरन ।
देश ढुंढाहर दुज्जन दंडन, राम वली महीपालन मंडन ॥४॥
जयपुर पीठ जिहान मे जाहिर;निश्चल कूरम को कुल नाहर ।
ते [illegible] जहँ, [illegible] बजत डिगी महँ ॥५॥

रंग निरंगत संग सुवालह, भोग अभोग ही भीम भुवालह ।
ता परी छांह उछाह मई अती, राच रही सिती कंठ पदम रती ॥६॥

(शंकर प्रणम्म्य दोहा)

जयति अनादि अनंत अज, धरम ध्वज सुख धाम ।
करू युगल कर जोरि के, पंकज पद नी प्रणाम ॥१४॥
कृपा सिन्धु कैलाशपति, अति बल अधम उधार ।
चौरासी मेटन चपल, अविनाशी ओंकार ॥१५॥
शेहसा नन गुन सारदा, पावत निगम न पार ।
मती मलीन में किम कथूं, आप सुयश ओंकार ॥१६॥

(छन्द पदमावती)

जय कृपाल शशी भाल काल रिपु व्याल मालधर बनवाशी ।
जय अमित दानहती कुमती वान मती मान रामरती सुखराशी ।
जय विश्व मूल कर चक्र सूल धर तेज थूल त्रिपुरे त्राशी ।
जय निरंकार शिव निर्विकार भव ऊँकार हर अवीनाशी ॥७॥

(छपय छन्द)

जय निरूपमं निरु पाधि जयति जोगेश जगत पती ।
सत्य धाम गुन ग्राम काम रिपु राम भक्ती रती ।
मुन्ड माल मृग छाल भाल शशी व्याल विभूक्षन ।
जटनी गंग अरु मंग संग जोगन पिसाच गन ।
परबत निवास कैलाश पती अती कृपाल आनन्द अयन ।
सगतेश दीन प्रण वती पदन बृख भद्धुज वारिज नयन ॥३॥

वरन कुन्द वर इन्दु चन्द्र शेखर चिन्ता मनी ।
सुर त्रिये मनी जग जननी कोटि रती सम ध्युति कामनी ।
अधम उधारन अवनी आय किये सदन अखंडित ।
गिरी गंगा वन गहन मदन रिपु लखी जग मंडित ।
सुर असुर नाग खग नारी नर चतुर वेद बंदित चरन ।
नरमद निवास कैलाश किय ओंकार असरण सरन ॥४॥

(दोहा)

केवल थल कैलाशवत अति सुन्दर अनुमान ।
पशु पंचानन परम सुख जुक्त जप स्थल जान ॥१७॥
कठिन पन्थ कैलाश जहं जीव अधम किम जाय ।
सुलभदीन जन यह सदन अवश्य पुकारे आय ॥१८॥

(स्थल वर्णन)

छवि गिरीवर सरीजन कटा पहारन केर ।
अविनाशी किनो अटा हरी रटा स्थल हेर ॥१९॥
ओट पहारन को अगम कोट वहं दिशी कीन ।
जोट बिकट वन सघन जहँ लिपट गंग लय लीन ॥२०॥

(कवित्त)

आसपास उन्नति उमंड भूधरान ऐन्दवन छिवरान भान पन्थन भगायो है ।
चहूं ओर गंग की तरंग उत वंग वहे बीच में त्रिकूट जूट प्रबत पगायो है ।
कहे सन्तेश मोज दोखये महेश मन पाहर पटाहर पे ठोर ना ठगायो है ।
चेन्ड ऐन्ट-चाल जहं विकट विलाश तहँ अद्‌भुत अवास में आसन लगायो है ।

(सवैया)

बंन भूरि बने चहुं ओरि घने गिरी किन्नर ऋखन कोर कढैया ।
ब्योर महा चख डोर झकोरन मौर झिंगोरन सौर मढैया ।
पावन मध्य पहार पठार बिहार चहुँ दिशी गंग बढैया ।
पेख परिब्रह्म प्रीति पगी छबि चित लगी बिरधा के चढैया ॥१॥

(छप्य छन्द)

उछलित जल चहूं ओर सारे त्रिशी ओर सकल थल ।
करि बिहुँ पखनी किलोल गोल चख डोल गंग गल ।
उजली गंग अध बीच प्रबल छबि पावन्न पाहर ।
पाहर दक्षिण पक्ष प्रफुल चित करन पठाहर ।
नही काम धाम विशराम निज निगम रीत निरमल निरख ।
उध्योत अखण्डित आप ध्युति हर हर हर शंकर हरख ॥५॥

(दोहा)

शंकर ग्यारे गन सहित सिवा सकल सुखदान ।
सरी हरी ब्रह्मा सहित सुर आशन क्रिये गिरी आन ॥२१॥
सरिता गिरिवर बन सघन यह थल मंगल मूल ।
एकादश इन्द्रादि यह आये जग अनुकूल ॥२२॥

(अग्यारे रुद्रनाम छन्द मोदक)

अभय अछेह अकल अब कृत हर,
अविकाशी सिव वान ईश्वर ।

तप्तापीर महेश त्रिये लोचन,
भव तत पुरष सकल भय मोचन ॥८॥

(दोहा)

श्री गनपती अरू शारदा शंकर भक्ति सुजान ।
ईन्दु सदन किने यहा सहित देव सनमान ॥२३॥
अग खंडन या अवनी को, जग मंडन थल जांन ।
देव दिगंवर दीन हित, आसन किनो आन ॥२४॥
पोहोचे किम कैलाश पे, पातक नरन पुकार ।
विपती विनासन विस्व पर, आसन किये ऊँकार ॥२५॥
पालन पंचानन पशु, जालन अग झंझार ।
गिरी सरिता बन गहंन जहं, आय बसे ऊंकार ॥२६॥

(दोहा गौरी वर्णन)

कोमल चल पल्लव दलनी, वन वृक्षन वहू वृन्द ।
कूकि कलापी कोकिला, मधु पक्ष्यन मकरंद ॥२७॥

(छपय छन्द)

प्रफुलित पल्लव दलन मृदुल पुस्फनि मकरंदित ।
विलसत फलन विहंग अधिक रती मधुर अनंदित ।
मधुप सैनि मडरांत वात सितल सुगंध वहीं ।
कोकिल कोर किलोल केकि शंकर विनोद कहीं ।
दाहंन कलाप साहन सुखद सीतल छांहन सघन घन ।
खट रितु निवास नव रसन पुनि वहु विलास ओंकार बन ॥६॥

(दोहा गोरी वर्णन)

सकल गिरीन की श्रेष्टता, ज्ञान ध्यांन में गुंज ।
विस्व विभुसन विकट बहूं, परवत पाहन पुंज ॥२८॥

(सवैया)

पावन पुंजरू ज्ञान को गुंज करक्खनी कुजनी सांज सन्यूं ।
उतबंग अटा घन को घुमटा त्रिकुटा जनु जूट जटा को तन्यूं ।
सिखरा सिखरा नवे नोख नरा सुर लोक सुरा चढवे को चन्यूं ।
बन बाहर लेत पटा हरपे वृखभद्धुज प्हारन हार बन्यूं ॥२॥
बहु रंग सुढंग उतंगन अंग अथंग दरारी करारी अरे ।
झुकि मन्दिर धाम पुरी झलके पुलकीन्त पहार पठार परे ।
तरजे बहु गंग तरंग तटा गरजे जल भाल विशाल गरे ।
अविलोक तही ओंकार अटा छिन में गरि पातक छार करे ॥३॥

(कवित्त)

अैसो भुमी पेन ओर भुधरा अनूप रूप पावस प्रजूप मानो परम प्रकास है ।
सुन्दर समाज से बिराज रहे अंगनपे अंगन अनंग ध्युति विविध विकास है ।
ठाम ठाम आसन निवासन मुनिसन के नृगुन निधान करे हरी गुन हुलास है ।
दरश दरिद्र को बिनास करे आस पुरी केवल कैलाश ओंकार को आवास है ।

(सवैया)

उमंडी गिरी कानन की अवली घुमडी जनु पावस घोर घटा ।
सननंकित कोकिल सोर सदा भननंकित भ्रम्मरी भौंर भटा ॥
चहूँ ओरन गंग किलोर करे छिछकार पहार नी वारी छटा ।
बहु प्रीति विनिती प्रतीत बसे यहि रीत लसे ओंकार अटा ॥४॥

पूर चहुँ दिसी पाहर पुंजनों केहरी गुंजनी कुन्ज करारो ।
सागर सो संलिता मिल संगम गंग तरंगस् कीन कुन्डारो ।
अंस धरयो उंकस्यो अध बीच प्रभाकर सो गिरी गूढ्ढ पुवारो ।
मंढ्ढ मयंक से मन्दिर में निकलंक बिराजत नाबिया वारो ॥५॥

(दोहा)

भूप मानधाता भये, आ खंडल की ओप ।
तेही शंकर गिरी शीखर पे, आरंभ कीन अनोप ॥२९॥
किलो अर्ध शिर कियो, अर्ध पुरी आरंम्भ ।
शिखर शिखर परि सुर सदन उन लख होत अचम्भ ॥३०॥
आसन घढ बिच ईस को, अद्भुत मुरत ऐह ।
मावत नही महेश की, दोय बाथन में देह ॥३१॥

(चौपाई)

कृती वासा बैठे नीस कामं । गोरी सोमनाथ गुन ग्रामं ।
स्याम रूप सुन्दिर छवी सोहे । मन्दिर सुर नर को मन मोहे ॥७॥
चारों खन्ड उपर चोवारो । हर लीला दरशावन हारो ।
अतिउमंग अरु अजव अनोखो । रिषी नकह्यो तेही रामझरोखो॥८॥

(दोहा)

राम झरोखे मन रुचे, चढ़ी चितवे चहूं ओर ।
शम्भु छटा बरसे सकल, जरे अघन को जोर ॥३२॥

(चौपाई)

पाव कोस पुरब पग धरके। अती टेढो इक बेढ उतर के।
पुनि परबत पे चढे पगारा। उपर जठर पुरी आसारा ॥९॥

(दोहा)

पछिम दिसी पुरी पोर पे, अती दुरगम आकाय।
कोटि पाप परले करन, महा कालिका माय ॥३३॥
क्रोधा नल तन कालिका, भ्रकुटि विकट मयंक।
चन्ड मुन्ड दल चुरनी, निज जन करन निशंक ॥३४॥

(सवैया)

क्रोधित काल कराल कला ललिता लिपटानी सिन्दुर न लाली।
बंक विलोकन भोक झुकी रुरकी उर मुन्ड प्रचन्ड न माली।
चन्डरु मुन्ड प्रचन्ड पराक्रम खन्ड त्रिखन्ड किये खड गाली।
गृीध श्रीगाल निपाल निहार बिराजत पाहर पे बिकराली ॥६॥

(दोहा)

जुनो पुर देखे जिन्हे, विसमय अरू बिसराम।
संकु लता सिन्दुर की, धीर बीर के धाम ॥३५॥

(छन्द पदमावती)

तहा मंदीर एक शम्भु को सुन्दिर चतुर मनुष्य को चित्त हरे।
बह अति गम्भीर धीर धरम ध्वज रसन राम पद नित्त ररे।
जो चितवत चरन कमल चितसती धरी दुसह दुक्ख दारिद्र टरे।
जग अर्थ धर्म अरु काम मोक्षफल सिद्ध नाथ सब सिद्ध करे ॥९॥

(दोहा)

को वरने सुर पर कला, बिथी विकट बजार ।
द्वार कोट निर जर द्वरिद, पुरित सकल पहार ॥३६॥
पूर्व पोर प्रती पान्डवा, सती द्रौपती संग ।
पाचो बंधव प्राक्रमी, अरजुन भीम अभंग ॥३७॥
व्योर उतरता बीच में, तीन पंथ को तोर ।
जाके दरशन ते जरे, जरठ पाप को जोर ॥३८॥
पच्चीस को पुरन कला, ओंकार अन भंग ।
पाव कोस गिरी मग परे, गरज सुनावत गंग ॥३९॥

(चौपाई)

दक्षिण चढत पंथ को दोर, छबि गृह बर पाहार को छोर ।
लखी पाखंड डंड सब लाजे, बावो भवर नाथ बिराजे ॥१०॥

(दोहा)

चढी न सके चारो वरण, सब कोई माने संक ।
समये कोई सूरवां, भेरव भाप भयंक ॥४०॥

(सवैया)

भय कारक पाहर भेरव को थरके नर नारी निहारी थला ।
विकरारी करारी दरारीन में कढी काल पताल में भूरि कला ।
अरराट नरवद को अरके छरके तन मन्दित छाक छला ।
वसी काशो यहां को निवासी भयो खल वृन्द निकंदन वीर खला॥७॥

(दोहा)

पुरव पाप्र प्रलय करन, कामेरी गिरी कुक्षी ।
सिढीयन रची स्नान को, मोक्ष करे कुमोक्षी ॥४१॥
कामेरी के कूल पे, धवल ब्योर में धाम ।
परम सिध पुजन करे, राजत सिताराम ॥४२॥

(सवैया)

निज दास बिलास बसे जबते तबते प्रभु आप पयान किया ।
बैकुन्ट पुरि बिसराय बिभो सुर सिद्ध मुनीन्द्र न संग लिया ।
गिरो में पुर में बन ब्योरन में बहु ठोर ही ठोर निवास किया ।
नित नारद सारद नाची रहे रंग राची रहे रघुबीर सिया ॥८॥

(दोहा)

गिरी कानन सुर मुनि सदन, ललित सुखन के लेप ।
मिलन चलन बरनन बहुरी, सरीतन को संक्षेप ॥४३॥

(दोहा सलिता वर्णन)

दलिती शोक पुरब दिशा, नर सुर करत निहार ।
जुगल गंग संगम जलधी, बिथुरती गिरीन बिहार ॥४४॥

(छन्द पद्धरी)

मल हरनी मात प्रथम मिलान, दरशंत कोस पुरब दिशान ।
पाहरनो प्रवाह नरमद पधारि कामेरी भेटि दक्षिन किनारि ॥१०॥
मिलि चलत दलत उछलंति मोद, गृही सरन शम्भु गिरी धरन गोद ।
उतबंग ओघ उछरती अपार, धर धरीत गिरीन जल विमल धार॥११॥

छछकारी वारी पहारी परंत केइ कच्छ मच्छ ऋडा करंत।
भव हरनी भार जुग भगनी जेट फबी मदन कदन हर सदन फेट ॥१२॥

(दोहा)

सपरश करी शंकर-सदन, उपज्यो मन अनुराग।
प्रभु की पर दक्षिन करन, भइ बहुरी द्वै भाग ॥४५॥
दक्षिन नरमद दुख दलन, चलि प्रवाह चतुरंग।
कामेरी उत्तर कढी, उवरति मोद उमंग ॥४६॥

(छन्द त्रोटक)

मिलि गंग प्रसंग अथंग महा, बहु रंग उमंग तरंग बहा।
भरि के अनुराग विभाग वही, रव भूरि दसुं दिश पूरि रही ॥१३॥
हुलसंत मृड़ा घन देखि हियो, लहरीश्वर को गिरी गोद लियो।
विहुं और झकोररति बारि पदं, महिमा लखि लज्जित गोरी मुदं ॥१४॥
करनी पद पंकज केलि कला, वहुधा सुर नदनि व्है विमला।
चपला ध्युति चंचल वान चली, महा भूधर पछिम छोर मिली ॥१५॥

(दोहा)

मिल प्रसंग दोउ गंग मन, अधम उधारन अर्थ।
पछिम दिशा प्रवाह लै, सकिली चली सामर्थ ॥४७॥
सदन गंग संगम सुखद, सुर नर करत सिनान।
नरक निकंदन निगम कही, परम लोक परधान ॥४८॥
मोक्ष दानि सुर सदन मन, वहुत पवित्र बिच्यारी।
रन मुक्तेश्वर रम्य रुची, कियो सदन कामारी ॥४९॥

(छन्द लिलावली)

थल सिथल अचल दल मृदुल सफल तल विमल गंग बहु पखती बहै ।
गिरी विपिन घहनि मधि मंद्दिर महन तिहिं चहन कहन चर अचर चहै ।
नर पर्दनि परत ऋत सुधनि करत दारिद्र निदरत लच्छि अरत लहै ।
तहां जगत जितेश्वर बिघन वितेश्वर रन मुक्तेश्वर नाथ रहै ॥१६॥

(दोहा)

रन मुक्तेश्वर मन रुचे, विपत हारिन की बानि ।
दुषह दरिद्र निदलन करी, देत लक्षि बहु दानि ॥५०॥
सनमुख मन्दिर श्याम को, जाकी अनहद जोति ।
निरखत नारीन नरन के, हिय निरमलता होति ॥५१॥

(सवैया)

कर कोमल श्यारि करे कमला विमला पद पंकज पानि बनी ।
ललिता लखि अंग अनंग लजे पट पीत किरिट नि सोभ सनी ।
गुन ग्राम सदा सुख धाम सबे घनश्याम चतुरभुज क्रान्ती घनी ।
खल दंड प्रचंड निखंड खरे धर मंडर श्री रण छोड़ धनी ॥६॥

(दोहा)

लटक मुकट कुन्डल लटनि, त्चटक जलज चित ओर ।
पुलकित पिताम्बर प्रभा, छबी छक श्री रन छोर ॥५२॥

(छन्द त्रोटक)

ईक मन्दिर दक्षनि पक्ष परे, कमला पति ता मधि केलि करे ।
श्रुति पाठक सत्त समाज सदा, रहे भूरि हरी गुण पुरि रदा ॥१७॥

(दोहा)

किले चढे इक मग कठिन, इक मग पुर की ओर ।
करिखनि कुटियन में करे, केई मुनि गुनि किलोर ॥५३॥
तट नरदम गिरी कर खलत, मार कंडेव मकान ।
सिद्धियन तन मंजन सफल, बर रघुपती विश्राम ॥५४॥
पुरो पाहार पठार पे, बिवर करख में बास ।
रहे तहां रघुवीर को, दुंध बिनासन दास ॥५४॥
श्री मदना रिपु को सदन, अनुपम पछिम ओर ।
पुरव विराजत पवनसुत, महा बलीन शिरमोर ॥५६॥

(सवैया)

रुद्र को बिन्दु समुद्र उलंगी के थाह बिथाह असुरान थली ।
लंक प्रजार उजारी अशोक दुवारी के दानव सेन दली ।
सिय समोद प्रमोद प्रभु भरि किरत से भूव भांति भली ।
ओंकार के आश्रम को अविलोक विराजी रह्यो हनुमन्त बली ॥१०॥

(दोहा)

विवध मुनिन आश्रम विपुल, छया सिन्धु गिरी कोद ।
पाहर दक्षिन पक्ष में, वरनो पुरि विनोद ॥५७॥

(दोहा पुरी वर्णन)

विस्व त्रिभुवन पुर वसत, अति विचित्र उनहार ।
नवल गोख झोखन विपुन, निरमल चित नर नार ॥५८॥

(छन्द त्रोटक)

महिमा सत कंठ पुरी की महा, रति नाथ विलोकि अनाथ रहा ।
बहु बिरथीये बाट बजार बने, सुचि सुन्दर सोज सुगन्ध सने ॥१८॥
धन संचित धाम बनी धवला, नवधा विधी नृत्य सजे नवला ।
बिहरे नर नारिये वृन्द बहु, सजि भुक्षन भार सिंगार सहु ॥१९॥
रमनीत है क्रुडीत रूप रची, सिती कंठ पदाम्बुज प्रीत सची ।
गिरजापति गावति गोखन में, झलके दुतिदाम झरोखन में ॥२०॥
नर सुन्दर रूप बने सुर से, अरमंद्ध ज सील बिध्या धर से ।
बनके धनके बहु बास बसे, करी कंचन ढेर कुबेर कसे ॥२१॥
पुर पुरन लोग विसोग पगी, ललिता बहु गोख झीरोक लगी ।
रचि मन्दिर ठाम ही ठाम रहै, कमलापति बासन जात कहै ॥२२॥
छिति मंडि अखंडित भूरि छटा, घुमंडी जनु पावस श्वेत घटा ।
चपला क़लसा चलि कानि चुवे, नख सिक्ख निरक्खह हरक्ख हुवे ॥२३॥
अगमा गम आदि अनादि अजं, कलि. क्रुडती पातक नाम कजं ।
बिधि आरती या अद्‌भुत बनी, घन घोरु नगारह ठोरे घनी ॥२४॥
बहु चंग उपंग मृदंग बजे, सह रंगनि बीन सितार सजे ।
मोरचंग मंजीर मिलावत है, गुन गाध्रव किन्नर गावत है ॥२५॥
सगरे पुर मन्दिर शंकर के, दुख भंजन देव दिनंकर के ।
प्रणतारत मोक्षन पुरित है, चकलेस्वर पातक चुरित है ॥२६॥
नित नारद सारद नाची रहे, रघुवीर सिया रंग राची रहे ।
कलि भूत अभूत रची करनी, विधी सारद पैन बने बरनी ॥२७॥

(दोहा)

वसती वास रिधसिध विवध, पुर शोभा अण पार ।
राजत जहा गिरीजा रमण, अटल छत्र ओंकार ॥५९॥

(छन्द कमला)

मन्डित लच्छिख लछ्ले खन्डित पड़ित पूरित सोभ सनी ।
रन्चिक रूपती नच्चिक निर्गुन वच्चिक बेदनी बुद्ध बनी ।
लज्जित दम्मनी भज्जित भूरज सज्जित सम्भव गाथ गुनी ।
बज्जित ताम्धुकि गज्जित गाध्रव धज्जित श्री ओंकार धनी ॥२८॥

(नरमद कुडा दोहा)

केलि करत कलिमल हरत, नरमद चरन निवास ।
प्रेमातुर प्रफुलित पलन, ब्लुलित ललित विलास ॥६०॥

(छन्द पदमावनी)

अमर कंठ मुल मुलिन हति सुलिन कुलनि मृघ पति केलि करे ।
वन गिरीन विलासनी पुन्य प्रकासनि चलनि मलनिकलि मलिन हरे ।
सुर सिद्ध वुद्धी निद्धी मन्जीर जितनु मुक्ति जुक्ति मई मननी धरे ।
सोई नरमदनी जुहित करनि चरन पर उछरउछर जल थलनी परे ॥२

(सवैया)

तहँ सुन्दर घाट वने सुघटा नित नहान छटा नर नारीन की ।
केइ पन्डित पुजन पाठ करे धुनी ईस पदं उर धारन की ।
मनु साय दसु दिश की मिलके जिलके कर थांरि निजारीन की ।
करी मन्जन पुज्य प्रत्यक्ष खरे दितती सजे पातक बारन की ॥११॥

(दोहा)

पुजन मंजन प्रार्थना, दिन प्रती पुन्यरु दान।
द्वज संतन दुरबलन को, घाट रहत घमशान ॥६१॥
नौका भर भर नारी नर, इत उत आवत जात।
जय शंकर नरमद जपत, गिरी कानन घररात ॥६२॥
बिच नर्मद बिरु पाक्ष के, सिढीयन सजी सम्हार।
सदना श्रम रुची सुची सकल, बनीक धनिक बाजार ॥६३॥

(छन्द त्रोटक सिढोयन सदन कृडा वर्णन)

बहु पानि दुकान मकान बने, घुमडे तहं ब्रिजन बारी घने।
पकवान पतासन पुरि पगे, लुचो लडव पेरन ठट्ठ लगे ॥३०॥
मनमान जलेबिये मालपुवे, हुलसे चित हाजर सोय हुवे।
रवि ठार तहा मनीहार रहै, बहु काच कथीर न कौन कहै ॥३१॥
दिशी दाहिनी दानव सैन दला जगतम्ब बिराजत जोति कला।
मुरके मग ऐक दुकान महा, रचि शंकर मुरति राखी तहा ॥३२॥
चित शंकर की नर भक्ति चहै, लखि सुन्दर सुरति सोय लहै।
चढी चोहट चारु चरित्र चिते, उमंडे नर नारी नर्त र उते ॥३३॥
मग मालिन ग्वालिन वृन्द मिली, डलिये दल फुलन पूर थली।
अलगादतो अंग अंकुरन के, धरी सुन्दर आक धतुरन के ॥३४॥
सजि सौंज सदा हित शंकर के, दल लेवु चढाव दिगंम्बर के।
जगु लेतु जहा तही भाव जिसो, ओंकार बजार बिहार इसो ॥३५॥

(दोहा)

पूरव दिशी चढी पान पे, मती आनन्दित मोरि।
सकल सोभ निधी शम्भु की, पाप निवारन पोरि ॥६४॥
सजि पुजन संजम सकल, नित निरमल नरनारी।
उमंगित चित अनुराग अती, केवल हित कामारि ॥६५॥
दक्षिन छबि दरबार की, गादी ज्ञान गहोर।
भूप मान धाता भवन, धरत संत धुनि धीर ॥६६॥
आगे न्रल शशी सम उदय, जहां अनुरागी जाय।
ज्ञान गुनाकर गनपती, पुजि प्रणम्मती पाय ॥६७॥

(छन्द भुजंगी)

दया सिन्धु लम्बोदरं लक्षदानी, गले मुक्त मालं धरे गुढ ज्ञानी।
सुरीन्द्रा नरीन्द्रा अहिन्द्रादि स्वामी, लसे वक्र तुन्डा वितुन्डा ललामी ॥३६॥
गुणाधीश मीसं सुतं मेक दन्ती, घ्युति तेल सिन्दुर शीशं दिपंती।
गजं करणकं कुन्डलं केलकारी, विनोदीश दारिद सिधी बिहारी ॥३७॥
द्रगं सुभ्रकं जारनं सोम साजे, विचे स्याम छोना अली से बिराजे।
मणी मरकिता मक्र मोलानी मन्डे मुखं पंकजाकार बाहु प्रवन्डे ॥३८॥
सजे पीत लीलाम्वरं सोभकारी, जुनंके पदं नोपुरं विघ्नहारी।
दधी दूव गौरोचनं धूप दीपं, सदा मोदिकं मिस्ट सेवा समीपं ॥३९॥

(दोहा)

प्रेमित परिगन प्रती पदन, जगत विटंम्वन जारि।
चपल नादिया निकट चढ, निज मन्दिर ही निहारि ॥६८॥

(निज मन्दिर बरनन दोहा)

सकल सुरन सिर मोर को, सदन सोभ को सिन्धु ।
मानो गिरीवर मध्यते, उकस्यो पुरन ईन्धु ॥६९॥

(सवैया)

पगी पाहर सुभ्र पठाहर पे वृषभ द्धुज शीश कला विकस्यो ।
चपला जनु नाचि रही चढिके कलसा शिर कंचन केर कस्यो ।
सितकंठ ललाम मुकाम सदा अनुराग सुभाग धरे उकस्यो ।
उदियाचल अंक झमंक झली निकलंक मयंक ही सो निकस्यो ॥१२॥

(चौपाई)

मन्दिर बिदस ललीत सुर मोहै । कह सकुलीत ऐसो कबि कोहै ।
विमल क्रान्ती मय शम्भु विलासा पाहर पे जनु चन्द्र प्रकासा ॥१०॥

(दोहा)

उत्र गोख अटान में, गुरत नदद घनघोर ।
सुनं सुनी नोबति सदय शिव, हिये आनंद हिलोर ॥७०॥

(कवित्त)

नोबत निशान पे घलत घमसान जे भनक सुनि कान असुरान भररात है।
दम्भहूको दोरमद मानकी किलोर कूर कुक्रम किरोरन को सोर सररातहै।
जोगनी जमात भेरवी के मन भात बहु बिसोये बिलात घनघोर घररात है।
डंका डररात ओ अवास अररात गिरी बन घररात धर व्योम धररात हैं॥३॥

(सभा मंडप महोतस्व दोहा)

सभा मन्डप संजुत सभा, सुर नर सुमित सुधीर ।
पाठक वेद पुरान के, गान कला गम्भीर ॥७१॥

उमंगीत चित अनुराग अती, वेद पढत सुर बृंद ।
रचीत भक्त गिरीजा रमन, मनु हो मधुप मकरंद ॥७२॥

(छन्द सांगीत)

सजित शम्भु गुन धुनी रिशाल बहु वजित मृदंद धुक धिन धवरी ।
सन्ननंकि सितार जुननजुनननकि झांझ ठननन्नं की ठोर ठुकुनुकु ठवरी ।
नृत्य नचित रम्भ सुरनर नरिन्द्र छवी छनननन छुकिनक छवरी ।
सुर नरखी नरखी प्रसु षरखी वरषी हिय हरखी हरषी हरहर गवरी॥४०॥

(दोहा)

धरत विप्र वहु वेद धुनि, करत निरत कलिकान ।
अष्ट पहर औंकार के, गंध्रव किन्नर गान ॥७३॥
दयासिन्धु के द्वार पे, परम चतुर प्रतिहार ।
उत्तम मध्यम मान सुनि, निरखी कहत निरधार ॥७४॥
ईश दरस हित तरस अती, जुर जुरी नर त्रिय जुत्य ।
भीर अमित शंकर भवन, ववकत विप्र बरुत्थ ॥७५॥

(चौपाई)

परम रम्य मन्दिर पर वेशा, मध्य महा प्रभु आप महेशा ।
अतुलित प्रभा अखिल भवनेश्वर, चिंता हरन नाग चंदरेस्वर ॥११॥
वाघम्बर को कियो विछोनां, झुकि झुकि फनि शिर लेत झुलोना ।
चन्द्रकला मस्तक चलकंती, जटा जूट गंगा झलकंती ॥१२॥
छार सकल तन मोभ छई है, रुन्ड माल गल रुरक रहो है ।
इम आमीन ईस अविकारी, त्रिवीधी ताप भंजन त्रिपुरारी ॥१३॥

(दोहा)

नवनी नाग चंदरे सर, करी बहु विधी कर जोर ।
दिक्षिन दिशी को देखिये, बिकस बिहोर बिहोर ॥७६॥
तीन हूं लोकन को तिलक, सुन्दर ताको सार ।
दुसह दोख दारिद दलन, दीन बन्धु निज द्वार ॥७७॥
पुरब पुन्य प्रभावतें, दुरियत नित दरबार ।
अनघ ब्रह्म आसन तहां, अटल छत्र ओंकार ॥७८॥

(सवैया)

छितीपाल धरे शिर छत्र छटा सु खलाखल गंग जटा खिलके ।
भल भाग सदा अनुराग भरयो सुचला चल चंद सिखे चलके ।
पुलके झुकि अंग तरंगनी में सु सलासल शेष गले सलके ।
प्रण में जग पारबती पती को सु झलाझल ज्योती ध्युति झलके ।

(कुन्डलिया)

झलकत गंग जटानि में चलकत मस्तक चंद ।
रूरकत माला रून्ड की फुनि कर लिपटी फुनिन्द ।
फुनि कर लिपटी फनिन्द वृंद वृंद के विनोदे ।
कर कंकन कोपीन मदन रिपु के मन मोदे ।
भृंग कनक फल भोग जोग ध्यानी जगदीश्वर ।
मृग छाला सन मन्डी अखंडित बैठे ईस्वर ॥१॥
निको नरमद को निकट विकट विसभध्वज वास ।
जुगल गंग मिल जलधी ज्युं बहु विधी करत विलास ।

वहु विधी करत विलास विमल बहु पक्षी बिलोले ।
कानन कुधर कठोर केहर चहुँ ओर किलोले ।
कलि पालक गिर करिख कुन्डारो कामेरी को ।
विकट वृपव व्वुज गिरी निकट नरमद के नीको ॥२॥
शंकर वागम्बर सजे बैठे रूप बिसाल ।
निरखत हरखत निरजरा तन घनस्याम तमाल ।
तन घनश्याम तमाल व्याल नृक पाल विभुखन ।
सघन दिगम्वर सोहे दलन जन दारिद दुखन ।
अमित कला गन अयन दिपत ध्युति कोटि दिनंकर ।
वसुधा रहे विराज साजि वाघम्बर शंकर ॥३॥

(छुपय छन्द)

मदन कदन सुख सदन वदन छबि पंच बिराजित ।
दश भुज दानवै दलन छार भुखन तन छाजित ।
पंकज द्रग जगपाल उर नर कपाल किये ।
जटा झलक जल गंग चलकी शिर चन्द तिलादिये ।
लंगोट ओट फुनि पति लपटी वाघम्बर विछतर विमल ।
झिलमिलत अर्क अन गिनत ध्युति ओंकार मुरति अचल ।

(छन्द हनुफाल)

सिती कंठ स्याम स्वरूप अखिलेश अचल अनूप ।
गुन तंत तेज गहीर, धुनी शान्त मत चित धीर ॥४१॥
निज ब्रह्म निगम निधान, सुरपाल शीश सुजान ।
मद मोह कोह वी मूल, थल व्योम मंडन थूल ॥४२॥

बल विक्रम बुध बारोस, अती अमल मूरति ईस ।
विरु पाक्ष विषय विरक्त, अनुभव अनिह अभिक्त ॥४३॥
शुचि सगुन निर्गुन सार, अद्भुत अनंग अपार ।
गौतीत प्रभुता गेह, शभ सरल शुन्य सनेह ॥४४॥
बहु बर्न अबर्न वेष, अण घड़ अलिप्त अलेष ।
पद मृदुल पंकज पानि, सुर असुर नर सुखदानि ॥४५॥
तन सघन बरन तमाल, भस्मांग भूषन ब्याल ।
झरकन्त मुन्डन माल, भल हलत लघु शशि भाल ॥४६॥
गरजत सिर पर गंग, तट जटि तरल तरंग ।
मुख पंच शोभा मंड, भुज दशनि प्रबल प्रचन्ड ॥४७॥
द्रग तीन दीन दयाल, कल्पान्त काल कराल ।
शैलात्मजा संगी सोह, मत मदन रति छबि मोह ॥४८॥
झिलमिलती प्रफूल्लि ज्योति, अनगिनती अर्क उदयोति ।
अरविन्द पद धरि अंक, नादियो नचत निशंक ॥४९॥
डिमराकि डमरू डंक, उर असुर दल आतंक ।
शनकादि शारद शेष, सुर नर विहंग सुरेश ॥५०॥
नित चरन कमल निहारि, वृष केत की बलिहारी ।

(दोहा)

बलिहारी वृषकेत की, लेत परम हित लागि ।
अरचित पद्र अरविन्द नित, अधिक अधिक अनुरागि ॥७९॥
ज्योति अखिन्डत जलति जहां, प्रफुल्लि प्रेम प्रकाश ।
हर हर शंकर शब्द सजि, बुद्धि जन वेद विलास ॥८०॥

निगत नित पथ निरख निज, हिय अति रहत हुलास।
विरति विनोदि विश्व पति, बिलसत अमित बिलास ॥८१॥

(सवैया)

विल से सित कण्ठ विलास महाधुनि सिद्ध स्वरूप नि शोभ धरे।
मृगछाल पहार पठाहर कौ करता पदमा सर सुद्ध करे।
ललिता प्रभुता ललिके लिपटी भव के तन भूरि प्रभाव भरे।
सक्तेश सदा प्रणमन्त पदं जय शम्भु सदा शिव शम्भु हरे ॥१४॥
मृदुला पद पंकज पुजनि गुन्ज अलि होय के सूर को चित अरे।
अकलिन्कत अंग अनंग अरि भव पुरित केतिक भावं भरे।
वर कुन्दक इन्दु विनन्द विरुक्त विज्ञान विधान विभौ बिचरे।
रति राचि रमापति के रस में जय शम्भु सदा शिव शम्भु हरे ॥१५॥
विरु पाक्ष विरूप विभूति वनाय विभूषन व्याल न के बिथुरे।
कर कंकन कानन कुण्डल केलि गिरीश्वरं डारिये हार गरे।
रुरके उरके उरमाल कपालन की खीर के जनुं ताल रिसाल भरे।
नखरे नव छाव्री प्रान करे जय शम्भु सदा शिव शम्भु हरे ॥१६॥
चलके शिख सुन्दर चन्द्रकला पुलके चित मोदनी पूरि परे।
जलके जल गंग तरंग जटा विकटा कुलटा कच में बिखरे।
मुख पंच महा मृदुलाम्बुज चक्ष त्रियंग विलोकि त्रिलोक तरे।
डमरू कर शूल स्थूल यलमं जय शम्भु सदा शिव शम्भु हरे।
संग शैल सुता मुदिता प्रणिता पद शोभे सदा मृदुला मधुरे।
विकटा गुलटा उलटा निछटा धरि मोल फणि कुटि लाम डरे।

चित चंचल उज्वल निर्मल नंदो स्वरानि मध्यो इयानि डरे।
नित पुज्य प्रणामति नारि नरा जय शम्भु सदा शिव शम्भु हरे ॥१८॥

(दोहा)

श्री शंकर शैलात्मजा सहित, नादिया श्रृष्ट।
पुजि पुजि पायन परत बरसत द्रबिन बृष्ट ॥८२॥

(छन्द दुर्मिला)

जुरे जुत्थ बिरुत्थ दशु दिशि के नर नारि निकारि विकारी वृति।
घस चन्दन केशर कुम कुम घोरि अबिरन अरगच्च और मति।
त्रिदुलकि धतुर सुपारि फलं दधि दुग्ध निधार निधार वति।
गंगोदिक गर्जे सदा शिर पे जय ओंकारेश्वर पारबति ॥५१॥
धरके गई बेदरु धुपरु दीप चढावत चांवर चार मती।
बरखे खरजूरनि कंचन बृष्टि प्रतिष्टि परि ब्रम्ह प्रान पती।
धुनि पुरीती बेदनि विप्रन वृन्द सुनावत शंकर सार स्वती।
सज आरति शारद शेष नचे जय ओंकारेश्वर पारवती ॥५२॥

(दोहा)

निगमागम नई बेदि दल, परमल गंग प्रभाह।
अरचन बन्दन आरति, उच्छब ईश अथाह ॥८३॥
बन्दित पद बृन दारिका, सुख कारिका सुरेश।
विविध भांति विनति करत, नित नरनारि नरेश ॥८४॥

(छन्द भुजंगी)

नमस्ते निरंकार ओंकार ईशं, गुनागार गिरजार्धन्गी गिरशं।
नमो निशचलं अभंगं अनामि, अजन्मा अजन्ता प्रलिप्ता अकामी ॥५३॥

महाकाय निकाय निर्मूल मूलं, स्वयं सिद्धि शरणागतं सानुकूलं।
कलाकोस कालारि कामारि कोही, गिरांज्ञान गम्यं अभगंम् अमोहो ॥५४॥
सदानन्द कन्द शिवं शान्त रूपम्, अर्तिंग भुजंगी बिरंगी बिरूमम्।
विभूति धरंम् भूधरंम् मध्य दाशी, झुके रंग भृगानि गंगा विलासी ॥५५॥
हरे पातिकं भार चरनार विन्दम्, दरे दारदं दार लिल्लार चन्दम्।
प्रफुल्ला ननं निरजाकार नैनं, विरक्तं वृषारूढ विज्ञान बैनं ॥५६॥
ध्रवंग धोर धरमग्य वोधं वरीसं, अनन्तार्क आभा धरंज् तेज ईशं।
धरे शूल ते दान दा भूल नाशी, हरो दास की त्रास कैलाश वासी ॥५७॥

(दोहा)

त्रास निवारहुँ दास की, त्रिभुवन पति त्रिपुरारि।
विरध वेद वरने विमल, सो निज हिरदे समारि ॥८५॥
तुम समान तिहुँ लोक में, देव नही दातार।
कमल पदनि परि के करूं, विनती वारम्बार ॥८६॥
जय कृपाल जगदीस्वरं, असमृथ नि आधार।
द्रष्ठित दुख दारिद्र दलनु, आनन्दित ओंकार ॥८७॥

(छंद नराच)

नमों कृपालु भाल शुभ्र वाल चंद्र धारिणम्।
विशाल निरमलारदे कपाल माल कारिणम् ॥५८॥
जटा कटा है गंग कीं तरंग ता पटारनि।
भुजंन अंग भूषनं विभूति शोभ सारनि ॥५९॥

मृगादि पंथ चास नंग मनंत क्रान्ती मंडनम् ।
प्रफुल्लित पंकजं पदंम् दरिद्र दोष दंडनम् ॥६०॥
दीयाल दीन के सदा सु नैयन तीन नीरजं ।
बृह्मान्ड खण्ड मण्डितं विरक्त भक्ति बीरजं ॥६१॥
अनूप पंच आननं उद्योग रक्त अम्बुज ।
धरन्त हस्त डमरू त्रिशूल श्री वृष ध्वजं ॥६२॥
रचि तरंग भृंग की उमंग अंग में रहै ।
निरन्ततरं निराह नेह ज्ञान पंथ को गहे ॥६३॥
अनादि ब्रह्म उर्वी पै अधीश वृन्द उद्धरे ।
ललाम चंद्र ज्योति लिंग विश्व रूप बिस्तरे ॥६४॥
सुरेन्द्र शेष शारदा नरेन्द्र बृन्द सेवितं ।
सरोज चर्न चंचरी कला गिला भलेवितं ॥६५॥

(श्री द्वादश लिंग बरनन दोहा)

ज्योति लिंग झलमिलत जग, द्वादश कान्ती दिनेश ।
नाम ठाम निर्मन्च निपुन, मनसिज दलन महेश ॥८८॥

(चौपाई)

सोराष्ट श्रुति निती सु पासी, सोमनाथ शंकर सुख राशी ।
सुर शैला मुल्कार्जुन मीसा, महा काल उज्जेन महीसा ॥१३॥
ममलेश्वर ओंकार महीधर, वृति पुरुषोत्तम केदारेश्वर ।
डाकन्या डमरू ओंकारा, भीम शंकरा भंजनहारा ॥१४॥
बारानसी अचल निजबासा, विश्वेश्वर हर विमलविलासा ।
तट गोमती धाम त्रिपुरारी, त्रम्ब केश त्रई ताप निवारी ॥१५॥

चिता भौन चिन्ता के हरना, बंध नाथ गुन वेद न बरना।
नागेश्वर द्वारिका निरन्तर, श्वेत बन्ध रामेश्वर शंकर ॥१६॥
शिवालय घुसमेश्वर सोहे, मूरति द्वादश मदन विमोहे।
ज्योर्तिलिंग सुमरत जग जेते, दिन प्रति इच्छित फल तिन तेते ॥१७॥

(दोहा)

दिन इच्छित फल देत है, लेत नाम चित्तलाय।
विषय विलाप कलाप कलि, मोह ताप मिट जाय ॥८९॥

(छन्द गीतका स्तुति)

जय निर्गुणात्म निरोह निर्मल निगम पत्थ निधान हो।
जय भक्ति आरति हरन शंकर सकल विधी सुख दान हो।
गौतीत प्रीत प्रतोति पालन किर्ती कवि कोविद कहे।
जय नरन भव निधी तरन लघु ते शरन चरनाम्बुज चहे ॥६६॥

(दोहा)

इम अनन्त जन ईश पद वन्दित बारम्बार।
नृत्य गान गुन ध्योस निशो, वहु क्रुडा विस्तार ॥९०॥
सांझ समय सुर वृन्द मिल, प्रफुलित प्रेम प्रस तार।
मन्दिर मंजि महेश को, सजत सेज श्रिृंगार ॥९१॥

(छन्द त्रोटक)

सुर शंकर सेज सिगार सजे, ललिता निरखे रति मार लजे।
सुर भूप अनुपम रूप सदा, तन भुखन भुषित भुरि तदां ॥६७॥
तन स्यामल चान तमाल तिसो, जल जोर घटा मझि अंग जिसो।
पट लील पिताम्बर से पुलिके भगुलि जनु बीज छटा झलिके ॥६८॥

रुचिरा हिये राजत रुद्र मुखी, श्रुति कुन्डल ते सुर बृंद सुखी ।
कुंलिसा जटि कंचन क्रीट कस्यो, उजले धुति शीश दिनेश इसो ॥६९॥
चलके सिख उपर चन्द्रकला, अनुराग ही पाग रही अचला ।
छित मंडल मंठन छत्र छटा, अहि राज लसे उलटा सुलटा ॥७०॥
सुर पालन हार सिंगार सजे, भवके दुख दारिद देखी भजे ।
उदियंत अनाभव की उपमा, शशी सूरन नूर अकूर समा ॥७१॥
कलि पाल कला नहीं जात कही, रसना वसुधा धर राचि रही ।
विधी वेदन पेन कथे बनि हो, धुनि ध्यान धरे हियते धुनि हो ॥७२॥
झलके खुर जूर जराउ जिस्यो, पलिका निज मंदर मधि पस्यो ।
लट मानिक मुक्तन की लटके, अनमोलिन अम्बर में अटके ॥७३॥
घन सार गुरे बर रंग घने, गदरान गलीचन कौन गने ।
पसु मोन बिछापति पुरि पटं, अति लस्टी जलस्सी थलं उलटं ॥७४॥
फबि रेशम पुंजन की फुररे अद्भुत उसी सन की उररे ।
पुष्पावलि कोमल पुरि प्रभा, छित गाल मसुरनि देख छभा ॥७५॥
उजले ध्युति अम्बर ओढन की, प्रभुताय महा प्रभु पोढन की ।
हर पोढन कीं हुलसान हिये, कलि बंधन साज सिंगार किये ॥७६॥
पट ओढ नये असमान पगी, लेहगां भव कोट पचास लगी ।
बिन्दली खग चक्र ललाट बनी, कच माग उडंगन साजि कनि ॥७७॥
अहिराज बिराजत बेनी असी, अलिके जुग नागिन सी निकसी ।
मुख मंजुल चंद ही मंद करे, द्रग मीन कुरंगनि कुंनिदरे ॥७८॥
सुख तुन्ड छली जनु घ्राण छटा, नक बेशर पे नव तत नटा ।
श्रुति कुंन्डल लोल किलोल करे, हिय हार शशी उजियार हरे ॥७९॥

कुच कंचुकि की अद्भुत कला, चपला जनु अंक धरा उझला।
कर कंकनि रंक मयंक करे, भव लोक अलोकिक मोद भरे ॥८०॥
मदना रिपु मोहित सी मुंदरी, तिहु ताप बिलाप हरे तिलरी।
पग नूपर शंकर प्रीत पगी, ठम कारत नार विहार ठगी ॥८१॥
सजि सारे सिंगार सुढार सिवा, निरकार विहार सो नित्तनवा।
चित श्री वृख केत चितौन चहे, गौरजा पद पंकज सरण गहे ॥८२॥

(दोहा)

सज सिंगार सोडस कला, अचला प्रेम उमंग।
पाय पलोटत पारवती, अगुन इस अरधंग ॥९२॥

(सवैया)

साजत सोर सिंगार सुढार विहार सजे जनु काम की बीना।
सोहत भूं सुर की सिर मोर बटोर कै कार रति तनु कोना।
वंक त्रिलोकनि कुं अविलोक अलिप्त सदा रहे आप अधीना।
नागर नार विहुँ निकलंक निरंतर नित्य विनोद नवीना ॥१९॥

(दोहा)

सप्त वार संसार शुभ, शिव वल्लभ सोमवार।
हरको करत संसार हित, असवारी ओंकार ॥९३॥
वृंद वृंद गज वाजी के, सजि सुर नर सिनगार।
कलि उधार कारण करे, असवारी ओंकार ॥९४॥

(कवित्त)

गाजतेगयंद औ तुरंगन के वृन्द सत्र साजते सुरन्द्र जे अनंद अधिकारी है।
बीन खंजरीन पे प्रवीन नर नागरीन नवीन तन भुषन बनाये नृत्यकारी है।

नाचते मयूर से मृदंग पे तुरंग महा झांझझल्लरी की झुननिक तान झारी है।
मुक्तसुधारी बहुपातीक प्रहारीछन्द गोर छत्रधारी की अनोखी असवारीहै।।४।।

(दोहा)

बजत नद विहद्ध धुनि, गज्जति गाध्रव गान।
सजित सिंधुर दुरद सुर, तरजती नृत्य गति तान ॥९५॥

(छन्द त्रिभंगी)

बजीनंद बिहदं अती उनमदं मुनि सुर सिद्धं सकल सजे।
बहु बिधं बीना बजत प्रवीना, भव रस भीना तरप तजे।
नर चित नरनारी सुभ सिंगारी भुसित भारी छकित छटा।
गंध्रव रस गावे भव चित भावे अति छबी पावे इस अटा ॥८३॥

(दोहा)

चितवत नरमद चपल चल, अतिबल सलिल उभेल।
नौका चढि निकलंक निज, करत अमित जल केल ॥९६॥

(चौपाई)

शंकर निरख सलिल थल शोभा, लेहरी बिहार करन मन लोभा।
नरमद उर अनुराग निहारी, विमल बानी विज्ञान बिहारी ॥१८॥
बिरद बिसद बेदन बिस्तारा, रति अचल जग राखन हारा।
सीमिटी सीमटी नर नार सयाने, प्रभु दरशन लगी करत पयाने ॥१९॥
तिनकी रुची पुरत त्रिपुरारी, प्रणत पाल बिरदावली प्यारी।
हिये अनुराग दीन दुख हरना, कली उधार नाना विधी करना ॥२०॥
अम्बर भूषन रूप अपारा, नौका रूढ होत निरकारा।
सकल गुनज्ञ गान गुन साजे, बाजन विवध ताल सुर वाजे ॥२१॥

निरतित अफछर अरु नर नारी, वनज चरण छबी की बलिहारी।
जलनिधी शब्द चलत जयकारा, पूरी सरित पुर विपन पहारा ॥२२॥

(सोरठा)

जय धुनि पूरी जिहान, शंख शब्द सभि सिद्धगन।
महिमा जासु महान, निरख हरख सुर नारि नर ॥६७+१॥
अति सलिल अथाह, चपल क्रान्ती नर्मद चलत।
मक्र किलोले माह, उछली औघ उन्नत अमित ॥६८+२॥

(चौपाई)

रुप वृपभ ध्वज नरमद राचे, निरख सलिल नाना विधी नाचे।
गरजत तरजत तरल तरंगा, उभलि अयल जनु उदधी उमंगा ॥२३॥
चंचल चपल चलन चल काही, छिलक छिलक नौका छिलकाही।
हलकि हलकि पद धरत हुलासी, पुलकि पुलकि पादोदिक प्यासी ॥२४॥
अमल कमल पद धरी फिर आवे, ललकी ललकी पुनिपुनि लिपटावे।
मुलकी मुलकी संकर मन माही, जल किलोल नौका चलि जाही ॥२५॥
भय रुज हरन तरनी छवी भारी, विहरत जल जनु प्रवल बयारी।
इत उत करत विनोद अनूपा भूधर विपीन सीतर सुर भूपा ॥२६॥
कौलत कौलत बहुरी किनारे, प्रणतपाल निज पुरी पधारे।
कई आरती कल्प द्रुम केरी, हरखत जन मुरती तन हेरी ॥२७॥
मोद मुदित निज मन्दिर मांही, प्रदिसत प्रभु पारबती पाही।
प्रेम पुरत दीनन की आसा, विस्व नाथ बहु करे विलासा ॥२८॥

(दोहा)

गान तान गुन ध्यान धुनि, विद्या विनय विवेक ।
इंहीं प्रकार ओंकार पुर, उच्छब होत अनेक ॥९९॥
ओस्टी सजि सन्तोस के, बिन सति बहु बिस्तार ।
कवि बरनन करि सकत किम, अद्भुत गती ओंकार ॥१००॥
पंच तत्व गुन तीन ते, विस्व कीन विस्तार ।
अन भूतन आगम अगम, आदि हिते ओंकार ॥१०१॥

(छन्द मोत्ती दाम)

नमो निकलंक सरं ओंकार, अनुपम मूरति रूप अपार ।
अलोकिक ईश्वर आप अनादि, जटाधर जोगीये जोग जुगादि ॥८४॥
गुनागार सागर ज्ञान गहीर, प्रणम्म हुँ तोहि निवार हूं पीर ।
तुंही गुण तीनरु पांचहुं तत्त, महा प्रभु पावन को तुव मत्त ॥८५॥
रचावत श्रीष्टी रजोगुण रूप, सतोगुण पातल सील स्वरूप ।
तमो गुण तेज प्रथरुम हूं तोहि, सहारत श्रस्टी बनावत सोहि ॥८६॥
असंभव उरध्व कीन प्रकास, प्रथी प्रस तारिये कोटि पचास ।
थपे सरिता गिरी सागर थोक, त्रिलोचन त्रुस्ट रचे तिहुँ लोक ॥८७॥
अकीस चतुर दस सप्त अनूप, रसातल हूंत अनन्ताहीं रूप ।
चराचर जोवसु आकरि चारी, बिरूपम से बसुधा बिसतारी ॥८८॥
सुरासुर गाध्रव किन्नर संत, जल थल पुरि असंखाहं जंत ॥
तुम्हे भव सागर के किरतार, तुम्हे जग पालन तारन हार ॥८९॥

अहो तुम कीन चरित्र अनेक, वनाय वनाय अनंताही भेक ।
अनन्तही वेरी उमा उपजाय, प्रलय करि फेरी लगाइये पाय ॥९०॥
प्रजापति लक्ष अहम पद प्रेरी, विध्वंसन यज्ञ कियो निज तिहीवेरी ।
उमाहित ढेल दिखाय उछाह, वृषासन सजि कियो निज व्याह ॥९१॥
कलानिधी काम निकंदन कीन, दया करि फेरि रति बर दीन ।
अनंगही कीनहूं काम उछेह, निरंतर आप कियो वहूं नेह ॥९२॥
उठ्यो असुरा धिप धारी अनीत, जलंधर देव लियो सव जीत ।
पुरंद्र परयो पद कीन पुकार, हम्हे प्रभु राखहुं राखन हार ॥९३॥
चढे सजि वेल कियो मन चाव, भयंकर जुध वढ्यो वहु भाव ।
वजे कर डंक गजे वृषकेत, सजे उत दानव सेनी समेत ॥९४॥
गिरे दोहुं भूप मच्यो भकरंड, कियो धर सम्मर श्रोणित कुन्ड ।
झलाभली खग्ग त्रिशूल झल्लकि, गिरे भट अंकनिशंक भल्लकि ॥९५॥
परे धर रुन्डरु मुन्ड प्रचंड, खल हल्ल काटि कियो विवखन्ड ।
भयो धर अन्वर भूर भयान, भई निशोव्योस गयो छिपी भान ॥९६॥
धराधर कंत डिगे दिगपाल, कियो घम शंकर कोप कराल ।
महा घमशान मची वहु भार, झमंकत व्योम हुतासन झार ॥९७॥
दिगम्बर उपर साजि के दाव, उठ्यो एग आग झलंधर राव ।
अतुल्यत क्रुध झुके जब ईश, सज्यो तिरशूल जालंधर सीश ॥९८॥
उडाय दियो सिर तोरि अकास, परयौं धर सन्मर शंकर पास ।
विधुसीये दानव सेन विरद्ध, जटाधर जिति जलंधर जुध ॥९९॥
वध्यो इम आप जलंधर वीर, पुरंदर देव निवारिये पीर ।
पर्यो नृप तोन भगीरत पूर, जटा मधी झेलिये गंग जरूर ॥१००॥

समर्पे ही सीस नच्यो दश शीस, बिजये त्रिहुं लोकरू लंक बरीस /
जरंत हलाहल ते सुर जानी, दिगम्बर आप पियो सुखदानी //१०१//
बाना सुर काज सजे वृष केत, हरि संगी शंकर कंकर हेत /
महा बल सिंन्धु दोहु सित मूल, सजे कर सारंग चक्र त्रिशूल //१०२//
भरे बल बन्ड प्रचन्डति भेष, मुरारि महा प्रभु आप महेश /
मचि बहु अस्त्रनी शस्त्रनी मार, परि तिहुँ लोकनी शोक पुकार //१०३//
बरक्कीय व्योम थरक्कीय थूल, चरक्किय चंक्र सरक्किय शूल /
हरक्किये आप बरक्किये बान, करक्खिये क्रश्न तरक्खिय त्रान //१०४//
लत्थ बत्थ जोगनी देव लरंत, भयानक भैरव भूत भिरंत /
सुरासुर सत्थ बिहु समरत्थ, बिरुद्ध हिं बीर बिरुथ बिरुत्थ //१०५//
सरोवर बारिध ज्यु जल सीच, कियो धर सम्मर श्रोणित कीच /
इसि विधी मन्डीव जुद्ध अखंड, बढ़ी भव ज्वाल इकीस ब्रह्मन्ड //१०६//
विनय करी देवी बहोरि बहोरि, निवारिये नीठ निहोरि निहोरि ।
रमापति भेटिये आपन रुद्र, सदा अनुरागिये सील समुद्र ॥१०७॥
इहि विधी कीनह जुद्ध अपार, भयो तब भूमी दयंत ही भार /
दिये केही दानव को बरदान, किये तिन हूंत सुरेश समान ॥१०८॥
परी जबही तब देवन पीर, भये तुम रछिय भंजन भीर /
दुखि होय पांय परे कोय दीन, कुबेर समान तिनें तुम कीन ॥१०९॥
अनाथ निवाजण आप अछेह, गिराधरनी धरकी रति गेह /
किये केई कोतिक आप कृपाल, दिगंबर दानिये दीन दयाल ॥११०॥
पराक्रम कीरत तोही न पार, बिनायक वेद बिरंची बिचार ।
सुरासुर सारद सिद्ध सुरेश, सदा गुण सोधि अशंभव पेश ॥१११॥

अलेख अखंडित आदिन अंत, सदा सुख खानि सहायक संत ।
दुनि नही तोय समो कोई देव, समापण सम्पति सुक्षम सेव ॥११२॥
जटाधर मैं विनवु कर जोरि, गरीब निवाजण शंकर गोरी ।
मिटावण दारिद दुख महेश, सदा चरनं सरणं सक्तेश ॥११३॥

(दोहा)

सरन चरन राखहू सदा, सकल सुरन सिर मोर ।
मैं अति मूढ मलीन मती, तके कमल पद तोर ॥१०२॥
तक निज पद कोटिन तरे, अधम अज्ञ अनचार ।
प्रभुता परम पुरान गन, वरनत जग बिस्तार ॥१०३॥
पद अरविन्द महा प्रभु, वंदहुँ वारम बार ।
आप दया उर आनिये, अति कृपालु ओंकार ॥१०४॥
परसि परसि निज कमल पद, लाहू सकल जग लेत ।
इम आसन करी अचल थल, बैठे श्री वृषकेत ॥१०५॥

(चौपाई)

बैठे अचला सन वृषकेतु, हरन पाप दीनन के हेतु ।
सकल लोक आयत संसारी, निरज पद परसे नरनारी ॥२९॥
प्रभु पद कमल पुजि कर प्रीति, व्यंजन सजि विधी वेद विनीति ।
पुजिपुजि परिके पद पावन, सब जन निरखत रूप सुहावन ॥३०॥
निरखिनिरखि शंकर तनु नीको, हरखिहरखि मन सब जन जीको ।
नृत्य करत सुर ब्रज नरनारी, तरजी तमकि बजावत तारी ॥३१॥

उमंगी उमंगी उर अति अनुरागे, ललकि ललकि गुन गावन लागे ।
विवधी तान धुखि ध्यान बढावे, लेहरी सूर अधिक लडावे ॥३२॥
पुनि पद कमल परत कर प्रीति, रहत चरन सिर धरि यही रीति ।
चरन सरन रहो वो चित चाहे, उठ चलबे को मन नउ माहे ॥३३॥
विनती करत बिहोरी बिहोरी, माफ करिहूं प्रभु ढिटही मोरी ।
अहो नाथ हम अधम अभागी, ईस पदन परी अह अनुरागी ॥३४॥
इम विनती करि बाहिर आवे, धरन कमल पद पुनि पुनि ध्यावे ।
धीरज ध्यान धरम उर धरके, निरमल मन्दिर द्वार निकरके ॥३५॥
गिरा उच्चरी शंकर गौरी की, नंद केसर निरखत छबी निकी ।
स्वेत बरन तन परम सुहावन भव तारन शंकर मन भावन ॥३६॥
पट भूषन के पारन पावे, ललिता निर नेन लिपटावे ।
ठाढो कृपा द्रष्टी की ठोहर, मन्दिर सनमुख मृदुल मनोहर ॥३७॥

(दोहा)

मन्दिर सनमुख मृदुल मद, उज्वल विमल असंख ।
नोख जोक निज नादियो, निरखत छबि निकलंक ॥१०६॥

(सवैया)

बेगनि वृंद्ध उद्धगनि को अरि संवित शंकर की सेव काई ।
उज्जल अंग अनंग उदये सुर नागर नारी नरा सुख दाई ।
कोमल चंचल केलि कला विमला अवलोकि त्रिलोक विकाई ।
निरगुन ब्रह्म निजासन मन्डित नादिया की अद्‌भूत निकाई ॥२०॥

(दोहा)

निपट नंदी केसरी निकट, दक्षिन दिशी दरसंत।
त्रिकट थली ठाडो वली, हिये अचली हनुमंत ॥१०७॥

(छन्द नाराज)

विशाल वाहुते वली दलो चमु दयंत की।
उदार बुद्धी सिद्ध दा सदा गुहिर संत को ॥११४॥
महेश की कृप म्हा रहंत शीश पे रची।
अनि अरिष्ट सिष्टी पे वलिष्ट पेन्ह वची ॥११५॥
कृपाल नैंन कंज से दयाल दीन दास को।
गहीर धीर ज्ञान गुंज पुंज है प्रकाश को ॥११६॥
समुन्द्र सोज सीलसो उकील रुद्र इश को।
घरोट धीट ध्यान में किरीट भुन्ड कीस को ॥११७॥
तुपार तीन तापको प्रताप पतंग सो।
सुरंग सिन्दुरं सच्यो उतंग मेरु अंग सो ॥११८॥
अछेह देह गेह में सनेह राम सीय को।
डरे पिसाच डंकनी हरे क्लेश हिय को ॥११९॥
निवास नर्मदा नदी अवास इशको अटा।
भुन्यो समुंद्र झंपिके छक्यो महेश की छटा ॥१२०॥
असोक लोक लोक के विलोक वीर वंक को।
टरेन नैन की टगी रागी चितौन लंक को ॥१२१॥

(सोरठा)

वायु तनय पद बंदि, बहुरि बिलोकत विमल थल ।
मन तहं हो मकरंद, बिहरत विवीधी विनोद जहं ॥३॥

(चौंपाई)

बहुरि बिलोकिय विवंध विधाना, निर्जर शंकर मन्दिर नाना ।
उज्वल उन्नत सिखर अनूपा, भूरि क्रान्ती भूतेश्वर भूपा ॥३८॥
कुम्भ कला उमंडी कमलासी, चहु दिशी चलकत घम चपलासी ।
सकल सदन अती शंकर सोहे, मुरती से सब जन मन मोहे ॥३९॥
जिनके नाम न परत जिनाई, गनपति गोरी गिरा गुनगाई ।
अमृतेश के सदन अनन्ता, सजि पुरान द्वज गण गुनि सन्ता ॥४०॥
चहन गहन सुरपति चहूं ओरा, चितवत चित गति चंद चकोरा ।
अद्भुत लीला पार न आवे, विधी सनकादि विचित्र बनावे ॥४१॥

(सोरठा)

निशि दिन गुरत निशान, ओंकार अखिलेश के ।
सुरपति शब्द समान, गिर सरिता पुर गर हरत ॥४॥

(दोहा)

अचल ईश ओंकार के, सिर पर शिखर सुढार ।
मानो उदित मयंक सो, निकस्यो मुदित बढार ॥१०८॥

(छन्द भुजंगी)

ससी सो सदा स्वेत संकेत सोहे महा काल स्वामी तहां चित मोहे ।
महा काल ओंकार ते प्रीती मानी, रखे शीश पे मित्र की राजधानी ॥१२१॥

अवंती पुरि में महं काल मिशं, जहां आप ओंकार सोहत शीशं ।
भये रुप द्वे एक ही ज्योति भासी, निहारे सबे शोक संताप नासी ॥१२२॥
धरा धीस धारे जटा गंग धारा, किलोल करे कंठ पे नाग कारा ।
विभुतीरु वागम्बरा को बिछुना, जरा मृत्यु जाके नही सिद्धजुना ॥१२३॥
लग्यो छुंब सु चंद जाके लालट, भखे अर्क भृंगारू नंगा निराटं ।
प्रजापाल पारवती प्रान प्यारो, विराजे वनाये छटा बेल बारो ॥१२४॥

(दोहा)

पद महं कालेस्वर परस, बाहीर निकरी वहोरि ।
महा प्रभु के मुकुट कु, जन विनवत कर जोरि ॥१०६॥

(चौपाई)

मुकट महा प्रभु को मन भावन परसत होत सकल् जग पावन ।
उतर दिशी मुख जाके ऐसो, कलुष करी दल केहरी - कैसो ॥४२॥
भीतर निरखी मोद हिय भारी, त्यारिन ध्युति दरशत त्रिपुरारी ।
सुकृत गंधक सबल समीरा, विसोये बारी घर भंजन भीरा ॥४३॥
दम्भ मोह मद निशी दिन कर से ह्रदय भक्ति कुमुद हिम करसे ।
सरल विमल चित जान्हवी जल से, दारिद वन कहं दहन अनल से ॥४४॥
गिरजा पति गौजित गुन गूढा, विरूज विरागी वृषभा रुढा ।
सुरती स्याम कोटि छवी क्रान्ती, वितवत त्ररित हरित भव भ्रान्ती ॥४५॥
जमपुर रोरि परत डर जाको, तिरत अधम नर सुमरिन ताको ।
पद कई वल्लि जाहि जपि पावे, उलटी जन्म नहीं आभव आवे ॥४६॥
दलति दरिद्र दोख ध्युति दरशे, परमानंद होत पद परशे ।
सोइ शंकर तहां आसन साजे, जगमग ज्योति छत्र शिर छाजे ॥४७॥

(सोरठा)

प्रभुता लहे न पार, शारद विधी सनकादि से।
अटल छत्र ओंकार, तहां बिराजे त्रिकाल पति ॥५॥

(छन्द त्रोटक)

झलकंत जलामल जोति जहां त्रिपुरारि बिराजत आप तहां।
अंग जासु विकास विलास इसो, कलि कोटि दिनेश प्रवेश किसो ॥१२५॥
धरी धार उदार गिरी गरजी, सिरपे हरि पायन सो सिरजी।
छलि के बहु धीर अधीर छली, मुकतावली सीतल वृष्टी मिली ॥१२६॥
चहूंधा तिलका वली चंदन की, बरनेन बने जग वंदन की।
बरबंक मयंक लिलाट बन्युं ठगिया छबि को सिर छत्र ठन्यु ॥१२७॥
द्रग तीन धरे इम तेज दिपे, रवि चंद हुतासन छोह छिपे।
कमलानन पंच कला धरके, सगुना गुन बारिध ज्यु बरखे ॥१२८॥
लिपटे तन व्याल विभूती लगी, उरमाल कपाल छटा उमंगी।
दश बाहू अथाह बरीस बलं, दलि दुक्खन दोख दरिद्र दलं ॥१२९॥
तिहूं लोक जनि गिरकी तनीया, अरधंग ब्रिराज रही उमीया।
अचिरंज त्वचा हरि आशन को, पदमासन पाप प्रना सनको ॥१३०॥
बहु विप्रन वृन्द विनोद पढे, मधुरि धुनि मन्दिर मोद मढे।
अरचा सजि आरती ले उमहे, गिरजापती के पद सरन गहे ॥१३१॥
थिरतान विधान गान थला, धरि चित करे बहु नृत्य कला।
निरखे मुख द्वे द्रग नारि नरं, प्रभुता प्रभु की ईम दीख परं ॥१३२॥

(दोहा)

देख दिगम्बर छवि द्रगन, हर्ष सकल जन होत ।
परि परि करत प्रणाम पुनि, जग पालक की जोत ॥११०॥

उहि थलते पुनि उतरिके, गुहा कुधर की गुढ ।
जालेश्वर जग ईश जहं, अति वल वृषभ अरुढ ॥१११॥

अति उदार ओंकार से, उत्तर प्रति गिरी ओर ।
च्यार भुजा चरनन चितें, मति प्रसन्न अति मोर ॥११२॥

(सवैया)

मन मूरत सांवरी मोहत है लखी अंग सु ढंग अनंग लजा ।
विकु है जगु जैन त्रसै तिनको घरके सिर जामन धर्म ध्वजा ।
कर आयुध च्यार कला कलि के नर है तिन निरखत नेक रुजा ।
प्रभु प्रेम पयोनिधी पूरणब्रह्म चराचर पालक च्यार भुजा ॥२१॥

(दोहा)

नेक चढे मन्दिर निपुन, सुचि समाज सरवज्ञ ।
प्रभु सेवक प्रभुता परम, धरा धीश धरमज्ञ ॥११३॥

(सवैया)

पुरके सिर पाहर के करिसे सुखमा निधी ठाम कियो सचना ।
बहु गोख झरोखन नोख बनी नित गान्धव गान नटो नचना ।
सब साज समाज धिराजन के विस्तार बने बुद्धी के बचना ।
सिरपे गिरजा पती होत सदा तहाँ राज सभा की महा रचना ॥२२॥

(सोरठा)

राज सभा रमनीक, बीच बिराजित विस्वपती।
द्रग भर जेही नर दीख, जम क्यंकर जासु जरे ॥६॥

(दोहा)

सोभा शील सनेह सुख, गुन बल तेज गहीर।
गरुड हनु लिछमनि गुनि, सहित सिया रघुवीर ॥११४॥

(छन्द दंडक – राम स्तुति)

निरखि मन हरखि रघुवीर सिये श्रेष्टता विमल तन विश्व बर जुगलजोरी।
पुलकि पटपीत मनु झलकि ध्युति दामनी कमल सी मृदुल मुरति किसोरी॥१३३॥
अमल पद अरुन अर व्यंद से मृदुल अति सहित चित विमल मति वेद बरने।
पदज पखुरिनी ध्युति पीन मुक्तीन नख छीन छल छेद्र हिय तिमीर हरने ॥१३४॥
झलकि रहे पदन पर रुचिर नूपर नीकर मुख रतीह मधुर चित वक्खनी मोहे।
ईशडर कुसुम सर विवीध तन भवन बर साजी जनु कमलरस रसिक सोहे ॥१३५॥
लंक छबी निर्ख मन रंक मृघराज को किंकनी कनक क्रन सोभ साजे।
स्यामसित अरुननग सुभग ग्रंथनीगुहि बिहीसी जनुजुगन आलीगन बिराजे॥१३६॥
सघनतन स्याम घग बसम कुस्मीत बरन तरु नरबी तेज मनी मुक्ती माला।
धनुबनि धरे दनुज दल बल दरे बिसद बल उदधी बाहू विशाला॥१३७॥
ग्रीव दर इन्दु अरविन्द आनन अमल अधर दशनानि रसना अनूपं।
कंजमनु कुलिस मुक्तो न मवलीन मय तडित संजुक्ती संजित स्वरुपं ॥१३८॥
चिबुक बर नासिका त्वुंड सु कन्यादि द्रग मीन मृघ खंजनादि कन मोहे।
कुटिल भृगुटि कलाभाल तिलकावली बानधनु विकट सरिसी जनी सोहे॥१३९॥

मोली मनी मुक्ती मय मंजु मंडित महाचंद्र रवि किरन जिम चलकी चीरा।
विहसी वामंग अरधंग सिय सीलनिधी गौर तन वसन भूषन गहीरा ॥१४०॥
दक्षिने पक्षि जगरक्षि धनुवान कर वीरवर धीरधर लंक न लौने ।
गुरुड़ हनुमंत वलवंत सनमुख सदा प्रणत पद प्रेम परहित पठौने ॥१४१॥
रूप रस रंग वल तेज प्रभुता परम सारदा शेष संशय समीपं ।
सरन सक्तेश अवधेश आनंद अयन दीन दुख हरन गुन दिव्य दिपं ॥१४२॥

नोट– इसी काव्य के पश्चात् कविराज शक्तसिंहजी ने अपनी उज्वल काव्य श्रेणी से नीचे रामचरित्र रामायण का उल्लेख शुरु किया है ।

(श्री ओंकार निरूपण अन्तर्गत)

अथः श्री रामायण बाल कान्ड

(दोहा)

करन सुफल मन कामना, हरन सकल भव भार ।
सरन नाग नर सुरन के, अनुभव परम उदार //११५//
अघ कुल वल वाढयो अवनि, असुरन करी उतपात ।
पुरि अयोध्या प्रगट भये, तीन लोक के तात //११६//
अवध पुरि हरि आय के, भये भानु कुल भूप ।
दशरथ सुत दैतन दलन, रामचन्द्र नर रूप //११७//

(छन्द मोत्तीदाम)

नमो सुर नायक स्याम स्वरूप, नमौं निज ब्रह्म धरे नर रूप ।
कृपानिधी कोमल आनंद कंद, चराचर च्यार के लोचन चंद ॥१४३॥

अनाम अकाम अनेकरु ऐक बसे बृषकेत हिये सोई भेख ।
बिलोकत ही भव ताप बिलात जपे जम क्ष्यंकर हूं डरी जात ॥१४४॥
हिये चतुरानन सासन हेर, किते पर पंच करे कलि केर ।
बिचारत ब्रह्म रिषी चहुँ वेद, भवादिक निर्जर भेद अभेद ॥१४५॥
सदा पद सेवत श्री सनकादि, अहीशन पावत आदि अनादि ।
धरे ध्रुव से निशी वासर ध्यान, निन्नायक सारद हेरि विधान ॥१४६॥
सदा सुख मन्दिर सुन्दर श्याम, धर्यो नरको तन कीरती धाम ।
अनुचित रीत करी असुरान, भयो भव मंडल भूर भयान ॥१४७॥
मिटी मख होम कुलं मुरजाद, पर्यो दनुजे दल देव पिषाद ।
हठे विबुधेश रहे सुर हार, करे पद आरत वंत पुकार ॥१४८॥
भयो नभ बेन कह्यो यह भेव, डरो मति हर्ष करो सब देव ।
दिनंकर वंश दिपे दशरत्थ, सबे भुव पालन में समरत्थ ॥१४९॥
उने घर में प्रगटौं सुत आय, मनोरथ पुरि हों ताप मिटाय ।
सबे तुम जाय बसो बन सोय, हिये धरी मो कपि स्वधप होय ॥१५०॥
ईती कही देवन को गुन ऐन, दया निधी दीनन के सुख देन ।
कर्यो हरि देवन सो यह कोल, वदे जस वेद अखंडित बोल ॥१५१॥
करि सुधि वर बरकी किरतार, अयोध्याह आय लियो अवतार ।
मही पति के उर पूरन मोद, बनाय चतुर बपु बाल विनोद ॥१५२॥

(दोहा)

सहित भरत बर शत्रुहन, रामचन्द्र घन रूप ।
ललिता निधी लछिमन लला, अद्भुत कला अनूप ॥११८॥

(छन्द मोत्तीदाम)

करे सरजु तट बाल किलोल, अनुपम बालक रूप अतोल ।
सजे धनुबान किशोर स्वरूप, भरे मनमोद निरखत भूप ॥१५३॥
पटम्बर की जगुलो पुलकंत, झुकि बनमाल हिये झुलकंत ।
झुनंकत नुपुर का झनकार, रनंकत बीनी मनु रति मार ॥१५४॥
जरि पट मानक की सजी ओट कियो कटि चंद्र कला जनु कोट ।
पगी पहुँची जुग पंकज पानि जटि नंग ज्योति दिनंकर जानि ॥१५५॥
बनि पगिया सिर पीत विकास, प्रभाकर से मनी वृन्द प्रकाश ।
झिले सिरपे किलंगी इही झोक, सबे जुग टेरिन सावत शोक ॥१५६॥
लटकत्त हाट्टीक कुन्डल लोल, कथे लटलाल कपोल किलोल ।
लया मृघ लोयन पे ललकंत, प्रभा तिलकावन्नी की पुलकंत ॥१५७॥
विराजत मोहन की इम वंक, धरयो रती मार सुधिर धनंक ।
निहारि निहारि के नाशिका नैर, बिरंचीपे कीरकी तुन्ड बनैन॥१५८॥
छपा कर आनन में छिपी जाय, राला छवि शंभु रहे लिपटाय ।
विरंची लहे छवि की बलीहार, अनेक अनंग जु डारही वार ॥१५९॥

(दोहा)

भ्रमी तिहूं लोकन भारती, छिबी हत मकल बटोरि ।
थकित भई वारी बुद्धि थिर वारिध ज्यों रही बोरि ॥११६॥

(सोरठा)

बोलनी चलनी विनोद, निरखत हरखित नारी नर ।
गुन निधी कुंधरि गोद, पुलकित नृपति प्रफुल्यचित ॥७॥

(सवैया)

दुख दाह मिटावन देवन की कमलापति भू नर रूप कियो ।
किलकेपुलके झुगली झलके ललिके जग को चितचोरि लियो ।
जग वे जन धन्य है धन्य जिने पद पंकज प्रेम पियूष पियो ।
बिहंरे पुर बाल कला बिलसे हुलसे दरसे दशरत्थ हियो ॥२३॥

(दोहा)

इम चरित्र अवधेश गृह, कल्प कल्प प्रभुकीन ।
बरनत सकल विनोद कुं, मति भारति गति मीन ॥१२०॥

(छपय छन्द)

जिहीं पद पदम पराग लगी शंकर लिपटावत ।
उमंगी अंक अनुराग पागी विधी पारन पावत ।
सहेशा नन सुमरीन्त सेव सनकादिक साधत ।
अस्तुति अमित उचार अमर मघवा आराधत ।
गननाथ गिरा गुन गन गहन भवन चतुर दस जस भरन ।
उमंडे उछाह चित लाह अस मही मुनेश मंगल करन ॥८॥

(छन्द गीतका)

उर उमंडी भूव अग हरन मंगल करन अमिन उदार को ।
जनु पुंडरीक पिनाग पुंज विलोकि विपन विदार को ।
खल दल प्रबल घन पटल परिबल बंड चंड बयारि को ।
मुख चन्द दशरथ नंद सुर मुनि वृन्द सब सुख कारि को ॥१६॥

(छन्द त्रोटक)

कमला पति यूं निज चित किये, दनुजे भव दारुन दुख दियो।
डिगरे न फिरे नर देव डरे, कलि को बर वीरसो पीर करे ॥१६१॥
करुना निधी शंकर मोहि कहे, रखिहूं पन मो मन यूंह रहे।
दल दानव के वल साजि दलं, चख को सुख लोकन देन चलं ॥१६२॥
अनुमानि मनोरथ आनि असे, विसवा मुनि के हिये जाय वसे।
मुनिराजहि जग्य समाज मडयो, वसुधा खलु वाद पिसाद वडयो ॥१६३॥
किलके दनुजा मख कूदि परे, रिछ पालन को मुनि माल ररे।
हिय में मुनि कोशिख जोश हुयो, लखमी वर भू नर रूप लियो ॥१६४॥
दुखिया रिपी दोरि संदेश दियो भूव पाल कह्यो रिषी लार भयो।
सजि वीर दोहुं धनु सायक को, मख को सुख दे मुनि नायक को ॥१६५॥
सुनसिय स्वयंवर शोभ सुनि मग मोद चले संग वन्धु मुनि।
मुनि गौतम की त्रिय श्राप मई, गिरी भूतन पाहन जूनि गई ॥१६६॥
पद राजत देह में खेह परी, कलि पालक वाल अनूप करी।
फरि केवट मित्र पवित्र कियो पद वारि पखारि छकारि पियो ॥१६७॥
जनकापुर राज समाज जुरयो, धनु को पनु भूप विदेह धरयो।
प्रभुता हित नूपति जुत्थ पच्यो, मही तेन सरासन नेक मच्यो ॥१६८॥
पुरलोक विलोकत सोक परे, वर व्याह उछाह सबे विसरे।
दुहिता हित भूपति देह दही, रसना तजि दानि निधान रही ॥१६९॥
दपि नोर निशातम घोर छयो, भुव व्योम अनुचित शोर भयो।
अगिनेश उछाह धरे उर में, पहुंचे रिपी संग उही पुर मे ॥१७०॥

पुर लोगन की छवि दृष्टी परी, भजि सोक गयो हिय प्रीत भरी ।
किलके बनिता मत ऐह करे, सखि श्यासल गोर किशोर सरे ॥१७१॥
पन भूप विदेह को कूप परो, कुंवरी घनस्याम को ब्याह करो ।
सिय मात हिय यह बात सुनी, बर ढ्योट भली विधी जोट बनी ॥१७२॥
जगु बात बनावत गात जरे धनु को पनु नाहक भूप धरे ।
सिय के दृग यों जुग सोभ सजे, तनु मीन ज्यो खीन लडांग तजे ॥१७३॥
ललचात सबे रघुनाथ लखे, बर नारी नरा पुर के बिलखे ।
उमांयो चित श्री रघुवोर इते, चक कौशिक के मुख वोरि चिटे ॥१७४॥
सुनि के रिषी के मुख शासन कुं, समंधे रघुनंद सरासन कुं ।
सिति कंठ को दंड प्रचंड परयो, बल बंड बिहंड द्वै खंड करयो ॥१७५॥
मही मंडल घोर सजोर मच्यो, विधी लोकन वीर सधीर बच्यो ।
भृगु नंद उठे बहुँ क्रुध भरे धनु लेकर कंध कुठार धरे ॥१७६॥
मख धाय मचाय भयंक महा, रिषी तेज हरयो बर विप्र रहा ।
बन विप्र गये मन मोद बढयो, मही पाल उछाह विदेह मंडयो ॥१७७॥
निरखे जग सोभ सियान करी, धर मंडन के बर माल धरी ।
दशरत्थ विदेह संदेह दियो, हुलस्यो सुनि के अवधेश हियो ॥१७८॥
सिकले नर नाह बरात सजे गज बाज समान निशान गजे ।
चतुरंग बरात उमंगी चली, थरकी छबि देख विदेह थली ॥१७९॥
बहु रंग बिनात विदेह रचे मृघ मद्द कपुरनि कीच मचे ।
घन तद्द दशुं दिशी वृन्द गजे लखि शोभ पुरंदर छोभ लजे ॥१८०॥
सजि संगल मोद विनोद सखी, रचि मंडप मंझिल राज रिखी ।
बर दुल्लव बंधव चारि बने, घनशार पटंबर भार घने ॥१८१॥

दुलही सिय आदिक च्यारि दिये, ललिता रति रम्भ रोमांच लिये।
परमेष्ठी प्रभा धर वेद पढे मधुरी धुनि नारद गान मढे ॥१८२॥
छति मंडिल मोद विनोद छयो, भव नाह को व्याह उछाह भयो।
बहु दायज भूप विदेह दिये, कवि को कुल कोकिल केलि किये ॥१८३॥
बहु विजन सौंजन को वरने, पलिका नंग कंचन के परने।
दशरत्थ दिये बहु दान दुनि, गजराज हूं वाज समाज गुनि ॥१८४॥
मनुहारि किये मन मोद मई, भरिके अनुरागरु सीख भई।
सुनि सीख वरातिय लोग सजे, घहरावत दुंदभी व्योम गजे ॥१८५॥
पहुँचे चलि कौशिल राजपुरी, भूव मंडिल शोभ समूह भरी।
पुर के नरनारी उछाह पगे, ललिके मन मंगल गान लगे ॥१८६॥
नित गान विध्या अरु नृत्य कला, छिति पुरि अखंडित छंडी छला।
अवधेश के द्वार अनंद इसो, कही शेष सकेन कवेश किसो ॥१८७॥

(इति वाल कान्ड समाप्तः)

अथः अयोध्या कान्ड छन्द त्रोटक

रघुनंद सिया रस रंग रये, छवि धाम सदा अभीराम छये।
तब देव रिषी चलो आये तहां, जग पाल लसे नर रूप जहां ॥१८८॥
बहुवा रघुनंद रिषी विनये, दरशे चरना धन है दिनये।
रघुनंदन से कही बेन रिसी, करिये सुर काज विलंब किसी ॥१८९॥
भव तारन को हरी त्यार भये, गुन गाय मुनि निज लोक गये।
सुर काज वने हरी शारद की, निवहों तुम शासन नारद की ॥१९०॥

उपकार बिच्यार गिरा उमंगी, पुर कौशिल रावर गंज पगी ।
इक चेरिय केकई केरि उहा, मंथरा लखि प्रेरिक अंक महा ॥१६१॥
अवधेश अछेह उछाह अरे कलि मंगल मोद विनोद करे ।
निशी ध्योस पुरि अनुराग नच्चो, महीपाल हिये सुख सिन्धु मच्यो ॥१६२॥
मुकरे मुख जोवत भूप मने, सितकेश विलोक संकोच सने ।
बुलवाय वसीष्ठ रिषी विनियो, भ्रमयो मन मोपन बृद्ध भयो ॥१६३॥
धरमज्ञ महोरत सुभ्र धरो, कलि मंडन के अभिसेक करो ।
सुनि बेन मुनि सब साज सजे, गुन गान विधान निशान गजे ॥१६४॥
पुर के जन प्रेम प्रवाह परे, भवने भवने न उछाह भरे ।
तिही बेरसो चेरिये देह तची, रशमे विष गोर कुबुद्धि रची ॥१६५॥
मति केकइ की तहां जाय मथी, करी क्रूर कलारू सलाह कथी ।
रघुनाथ दई नृप राज सरी, पद सेव भरत ही शीश परी ॥१६६॥
धिक्क जीवन भो किम धीर धरे, मंद भागनी तुं किम बुदि मरे ।
हहरावत केकई रोस भई, गृह कोप तहां ततकाल गई ॥१६७॥
झिरनाथलहं द्रग नोर झरे भुव पे गिरि त्रास उसास भरे ।
दशरत्थ दशा त्रिय की दरसी, सुख नाश निशा दुख की दरसी ॥१६८॥
वत रात धिराजन बोलत है, डसकालरु गात न डोलत है ।
बरके नर नाह उठाय बहै, करिखे भरिखे त्रिय बेन कहै ॥१६९॥
हमते करि याद न नाह हियो, दुबके कही मो बर सों न दियो ।
तब भामन से भव पाल भने, बरदान गुमान कहुँन बने ॥२००॥
कर चाह बिथाह उमांह कहो, ललचे मन सो इहिं बेर लहो ।
कसिके द्रग केकई ऐस कहे, बन राम चतुर दश वर्ष रहे ॥२०१॥

लछ वेन महीपति अंक छिध्यो, भृमि भूमि गिरयो विष बान भिध्यो।
उठि वे नर नाह गोरा उचरी, पलटीन विरंची की जानि परी ॥२०२॥
वरतो कह नीक भयो वनिता, हट है मम प्रानन को हनिता।
करि घात महा विप वात कही, सरसी मम घातन जात सहि ॥२०३॥
अव आनि दया सुत को उर में, पद कोमल राम रहे पुर में।
अभिषेक भरत्य सजो अवही, सुख राज समाज दियो सबही ॥२०४॥
सुनि कैकई ये कटु वेन सजे, ललचात सुते वन देत लजे।
टरकात हमें कवहूं न टरूं, कलपान्त कहा अपघात करूं ॥२०५॥
तिरछे त्रिय के नृप तोर तके, थहराय परे धर वेन थके।
डस जात भुजंगम जेम डरयो, पख हिन मनो खग दीन परयो ॥२०६॥
नरनाह दुसाह निशान घटी, उमंगी भव भानु कला अघटी।
गुनिये गन मंगल द्वार गजे, वहु वृन्द अनंदित द्वन्द वजे ॥२०७॥
मुनिराज वसीष्ठ सौ मंत मिले, चित मोदित भूप जगान चले।
ठुठ के पुर लोग वियोग ठये, रमनी थल क्युं महिपाल रिये ॥२०८॥
गुन मन्दिर श्री हरी दोरि गये, छिति पाल विलोक्त सोक छये।
कही केकई सो करुना करके, परतोक्ष पदम सिर दे परके ॥२०९॥
किम भूप भया कुन मातु कहो, रंशना निज दयुं सजि मौन रहो।
तव मातु कही वन देन तुम्हे, होय राज भरत्य सुहात हम्हे ॥२१०॥
सुत यों सुनि के नृप शोक सुन्यो, वनवास तुम्हे नहीं देत भन्यो।
कवहूं मुख तेन भरत्य कहे रघुनाथ, हिये निशी घ्योस रहे ॥२११॥
अभीलाष सदा तुव आनन को, कहो जात कहो किम कानन को।
वन वाघ विराट् समं विचरे, तज मौन लला किम गौन करे ॥२१२॥

चलहे करहे गुनहे चितुकी, हम हों सुत के पितु की हितु की ।
जननी मुख के सुनि बैन जबे, सुर भूद्विज कारिज हे रिसबे ॥२१३॥
अनुराग भरे रघुनंद उठे, प्रण मो जननी बन मोहि पठे ।
बन को मन मोदन चाह बढे, रिषी वृन्द तहं तपी ब्रह्म रढे ॥२१४॥
कुधरे छबि गंग किलौर करे, हुलसे चख मंजन पाप हरे ।
बन तालन शोभ विशाल बनी, शुभ कंज कमोदनी पुंज सनी ॥२१५॥
मन भावन कानन में मृघीया, पिक चातक बोल सुधा पगीया ।
फल भोजन कुं घन वृक्ष फले, छलके बर क्षीर सगीर छले ॥२१६॥
बर नेन बने सुख जो बन में, मही पालन शोक तजो मन में ।
नरनाह निवारिये मोह निशा, अज के कुल आप दिनेश ईसा ॥२१७॥

(दोहा)

कोशल्या पद विनय कर, सिया लिछमन ले संग ।
कानन रघुपति गौन किय, उर सुर काज उमंग ॥१२१॥

(छन्द नराच अष्ट द्वजा)

प्रणम्म मातके पदं सुरामचन्द्र जु करी ।
सिया अनंत संग ले पयान धारना धरी ।
सुनि वशिष्ट रिष्ठ होय निष्ठ केकई कही ।
म्हा सशोक मेदनी वियोग धार में बही ॥२१८॥
सिया अनंत राम संग पांय भूप के परे ।
संतुष्ट देह सासनं कुमार पे कृपा करे ।
निहार नेनके नरेश बैन ना कछु कह्यो ।
सभीत धाय में मनु सु शस्त्र कुन्त ज्यो सह्यो ॥२१६॥

सुरेश भू द्विजादिगो समेति भीर सोधि के ।
गुरु निवास कुं गये प्रभु पिता प्रबोधि के ।
गिरे हरि पदं गुरु वशिष्ट नैन नीर है ।
पुरि प्रजा प्रलाप के धरीन चित धीर है ॥२२०॥
भईती संग भीर पीर धाम काम ना पगी ।
रची स्नेह राम केसु लार मेदनी लगी ।
अरन्य माग आग में नदी निवाश जे निशा ।
मुकाम कीन राम ठाम तीर नीर तामसा ॥२२१॥
निशा टरे जुरा मरे पुरि नरा रहे परे ।
सुजान दे भुलान यूं पयान काननं करे ।
वियार वेग वाज साज राज स्यं दनं रहे ।
उडे खगेश यूं गये गोहा कीरात के ग्रहे ॥२२२॥
अनाथ नाथ के सनाथ भेंटि राम भील से ।
पठे सुमंत कुं पुरि सिखे वि मोह शील से ।
सुमंत व्यथा कथा वियोग सोग वाजि को ।
गनेश शेषहुं गुने कवेस कोन काजि को ॥२२३॥
गुहा बनाय ठाम राम सिये साथरो रियो ।
सु प्रात राम आतसी किरात गंग पे गयो ।
घनाय वान प्रस्त वेश देखते सुमंत के ।
गये सो पार गंग के सहाय गाय संत के ॥२२४॥
गुहा कही गरीब हूं लगाय संग लीजिये ।
दरी मगा दिखाय हूं किरात दास कीजिये ।

प्रयाग नाथ के सुनाय सोभ साथ सिय कुं।
चलासु चित्रकूट कु हुलास दास हिय कुं ॥२२५॥
मुनेश भारद्वाज सु भई सु भेट भाव सुं।
त्रिवेनि विस्व तारणी तयार गो प्रभाव सु।
किये पवित्र पातकि जितेक माग में मिले।
चकोर चित रामचन्द्र चित्र कोट कूं चले ॥२२६॥
रमापति गये जहां मुनेश बालमेक है।
निरह ब्रह्म रूप राम नेहकी नजिक है।
मुनिश से कहंत राम ठाम मो बताइये।
मुनि कही रमा निवास चित्रकोट जाइये ॥२२७॥
विलोक चित्रकोट को अलोक मोक्ष की अटा।
नचे निशारु ध्योश भक्ती नो प्रकार वे नटा।
रहे रमा निवास जु कुशान्ड साथके कुटि।
मिले मुनीश मोद मान राम के जिते रटि ॥२२८॥
गुहा स्म्हार गेह ऐह श्री मुखे उचारियो।
मिलाय संत मंडली अनंत प्रेम धारियो।
प्रणाम राम पाहिमे किरात माथ दिखियो।
अघाय नाथ मे अघी लगाय कंठ सूं लियो ॥२२९॥
रजाय शीश राखिके गोहा मुकाम कु गयो।
सुमंत स्यंदने सजे बिलोक बावरो भयो।
पठाय दुत द्रपुरी सुमंत कु संबोधि के।
सुनाय राम की कथा यथा समय सु सोधि के ॥२३०॥

सुमंत देह शोक गहे रेन भीत वह रियो।
निहोरे भोर राम को विछोह भूप सों कियो।
अरोह मोह द्रोह कोन सोह भूपति सहयो।
पयान प्रान के भये सो राम राम ही कह्यो ॥२३१॥
तितेक राह तेल देह ध्रम्म धीश की धरी।
सवन्ध भरत वोलिके क्रिया विधान तें करी।
भरत्थ राज देन कूं मुनि गुनि दुनि मिले।
विहाय राज राम के चरण दास व्हे चले ॥२३२॥
लगे सो संग लोग भरत्थ शोक सिन्धु में सने।
चलेति चित्रकूट कूं मृणाल हेम ज्युं हने।
किते गयंद साथ ले कितेक पाव पैदलं।
कितेक वाजि साज के कितेक वेल ले हलं ॥२३३॥
इते विदेह औधकी मंगाय सौंघि भोन भो।
समीत सैन संग ले गिलान ठान गोन भो।
मिले दोहुं दिले जहां सवन्ध सिये राम है।
मुनिश मंडली मिल्यो जपादि अष्ठ जाम है ॥२३४॥
चकोर चित्रकोट के रिषी पखी सुरा नरा।
मयंक राम मुख के सुधा स्नेह संभरा।
भरत धाय जाय राम पाय दंड ज्यूं परे।
उठाय हिय लाय राम नैन निरजरा जरे ॥२३५॥
मिले गरु विदेह मातु मित्र लोग मेदनी।
वियोग राम सिय के सुशोक भूप के सनी।

मुनेश ईश की कथा कही प्रथा जथा भई।
सयान ब्यान वीरता गुमान धीरता गई ॥२३६॥
अयान बोध पाय के वशीष्ठ कोशिका दिते।
अमोह ज्ञान उचरे यथा प्रथा अनादिते।
भरत्थ भक्ती भाय के विनय विशेष विस्तरी।
कृपालु राम क्रम छेद भ्रम धारणा धरी ॥२३७॥
पदारु विन्द पावरी भरत्थ मांग के लई।
दया निधान ज्ञान भक्ती खान ठान के दई।
वशीष्ठ संग ले सबे विदेह जू भये विदा।
विनय करी रहे बन्धु सनेह त्ररण को सदा ॥२३८॥

(दोहा)

अवधी जनकपुर गे उलट, भरत विदेह भुवाल।
शीश राखि शाशन सुभग, कही ज्यों राम कृपाल ॥१२२॥
पुज्य जब लग पावरी, भरत राम पद भाय।
सुर कारज करी स्यामं घन, आप दिरश दीश आय ॥१२३॥

(इति श्री अयोध्या कान्ड समाप्त)

अथः आरराय कान्ड प्रारम्भ

(दोहा)

परि चंच विदेही पर, कपट काक तनु कीन।
मनुज जानि माया पति, मघवा सुत मति हीन ॥१२४॥
गर्भ गारि सर लारिकर, तिहुं पुर भिति भ्रमाय।
ऐक चक्षु हिनु कियो, परयो आय जब पाय ॥१२५॥

(छपय छन्द)

चित्र कोट ते चले मिले अत्रिय महा मुनि।
वधि विराध वर वीर पूर शर भंग प्रेम पुनि।
दरश सुतिक्षन देय परश कुम्भज रिषी पायन।
पंच वटी पग धार सुर्पनखां किन कुमायन।
दल सहंस चतुर दश सहित दलि खरदुशन त्रिशि राशी खल।
सुर वरसि सुमन करि हर्ष कही प्रभु जय जय भुजबल प्रबल ॥९॥

(दोहा)

छितिजा अनल छिपाय के, रूप छांह ढिग राख।
आय हरि तेही असुरपती, आप मुक्ती अभिलाख ॥१२६॥
सीता को उन संग ले, निकले होय निशंक।
गीध युद्ध करके मगा, जा पहुंचे निज लंक ॥१२७॥

(छपय छन्द)

करि वध कनक कुरंग भंग किये तनुक्र बंध भट।
गिद्ध क्रिया करि गये तहां स्रवर्ग सलिता तट।
नवध विधी निर वारि धारी पंपासर पायन।
मुनि नारद ही मिलाय भयेउ संतित चित भायन।
पायोदि प्रेम पुरित गये सुरती हिये धरि स्याम वन।
रघुपति निवाह जहं वास वहु खग जलचर वर वनज वन ॥१०॥

(इति श्री आरण्य कान्ड समाप्त)

अथः किष्कंधा कान्ड प्रारंभ

(सोरठा)

रिषी मुख गिरी कह राम चले संग लछमनि सहित ।
परि पद कीन प्रणाम प्रेम सहित मग पवन सुत ॥८॥
अति हित लिय उठाय कृपा सिन्धु प्रभु आय कर ।
भेटे निज तन भाय दास कियो बरदान दे ॥९॥

(छन्द हनुफाल)

बल उदधी दोनों वीर, धरि कंध हनुमत धीर ।
चढि गये गिर करी चाव, परशे सु कंठही पाव ॥२३९॥
कहि मित्र करि कलिपाल, शर ऐक हरि हूं साल ।
शर ऐक ते तरु सात, गे बेधि भो सुख गात ॥२४०॥
हति बाली ऐकहीं बान, सुग्रीव भूप सो ठानि ।
जुव राज अंगद जाय, लंछमन दियेउ हित लाय ॥२४१॥
रिषी मूक गिरी रखि रीत, बिरखा गई समये बीत ।
बन चरही भाल बटोरि, जोधा अवल दल बल जोरि ॥२४२॥
बरदान दे घन बोध, सासन दियेउ सिये सोध ।
हनुमंत दिशि प्रभु हेरि, बर मुद्रिक तिहि बेर ॥२४३॥
हनुमान के दई हात, निज रूप सी रघुनाथ ।
पुनि प्रनत हित अनुपारि, शिर धरयो कर सिधीकार ॥२४४॥

(दोहा)

कहि सन्देह सामा सहित, चिन्ह लेस करी चाहू ।
उलटि कुशल चित आय के, दुहुं दिशी मेटहुँ दाहू ॥२४५॥

(सोरठा)

जनक सुता ढिग जाय, कपि संदेश मेरो कहो।
मन दुच्छित मिटाय, आव तात अतिबल अभय ॥१०

(दोहा)

दोरे कपि दिशहु दिशां, प्रभु मुख सासन पाय।
लंक दिशा हनुमत लगे, नलनी चरन शिर नाय ॥१२

(छपय छन्द)

सवल धनंम जय सूवन प्रबल जुवराज भाल पती।
उमडी जुत्थ कपि आय मिलेउ अंक दनुज द्वंद सती।
वधी अंगद उहि वेर गिरी विवर पियो वन।
वृध नारी वर दियेउ शीघ्र कपि मिलहुँ सिय सन।
द्रग.मुंद लेहुँ मिली सकल दल तुम गवनऊं दरियाव तट।
मैं जाऊं जहां लगु बंधु जुत मदन कोटि छवि को मुकट ॥११

(दोहा)

सिन्धु तीर सम्पालि कही, जलधि लंघी जो जाय।
सोध लंकते सिय की, उही सुनावे आय ॥१३
अपनु पोरिश आप मुख, उचरे सुभट अनंत।
जन्म कथा जामवंत मुख, हूलसी सुनि हनुमंत ॥१३

(इति श्री किष्कंधा कान्ड समाप्त)

अथः सुन्दर कान्ड प्रारम्भ

(दोहा)

विकट रूप होय बल बढ्यो, कथा सुनत निज कान ।
गौ पद सो बारिधी बन्यो, होय ठाडो हनुमान ॥१३२॥
काल छेप जब लग करु, प्रभु प्रताप मग पेख ।
मैं सीता निज मात पद, द्रग भर आउ देख ॥१३३॥

(छन्द त्रोटक)

कहिके कपि वृन्द प्रणाम करी, ध्रव स्यामल सुरति अंक धरी ।
रघुनंदन को हिये रूप रियो, भुव व्योम बिहु मग ऐक भयो ॥२४५॥
कुधरे पग देत अलोप करे सुनि शुद्ध अरिन्धन धीर धरे ।
बर बीर समीर कधीर बली, थपी मंत्र दलु दश कंध थली ॥२४६॥
उर आनि असि असमान उडयो, किधो बानिक मानकु तानि कढयो ।
मग जात अहि कुल मात मिली, चित साखि सजी बर भाखि चली ॥२४७॥
खल बारिध छाह ग्रहे खगकी, उही मारि के फार करी अंग की ।
मैनाक ही पाक कियो मग में, डहस्यो दधि डूबि गयो डग में ॥२४८॥
गिरी कूधि चढयो जब पार गयो, छबि देखिये लंक कनंक छयो ।
गढ लंक पुरी सब सोधि लई, भूवजा तनु भेट कहूंन भई ॥२४९॥
गुन ग्राम विभीक्षन धाम गयो, वह बाग अशोक बताय दयो ।
मति विक्रम जाय दई मुंदरी, भई शीतल मुरती शोक भरी ॥२५०॥
कर जोरि निहोरि के पाय परयो, हरो क्षेम कही सीय शोक हरयो ।
.... ॥२५१॥

(दोहा)

दुगनो तौर तनते दुखित, मानि राम तन मात ।
अब तोहित प्रभु आइ है, निश्चर करही निपात ॥१३४॥

(सोरठा)

अमर अजित सुत होउ, अक्षय सिये मुख उचरी।
तजहि न कबहूं तोउ, राम कृपा शिर पर रहि है ॥११॥

(छन्द दंडक)

वात को जात परी मातु जल जात पद जाह झल काहुं शासन सुनायो।
ललकि लंगूल तरु थूल निरमूल करि झारिफल भच्छी जब जंग मायो ॥२२५
तोरि तरु वाग चहूं ओरि फेंके, तबे सोरि करि दानवा दोरि आये।
लूमते लरि वहु डारि दधि में ऊते मारि तनु मर्दि भूमि मिलाये ॥२२६॥
सुनत दशकंध खल वृद कही कोस ग्रही अच्छ सजि घुमंडी रथ उमंडी उठयो।
ठानि बल विपुल दल पानि धनु तानि करि वारिधर वून्द वान वुठयो॥२५४
हेरि हनुनंत खल घेरि चहूँधा धस्यो फेरि के पूंछ दल ढेर पारयो।
अक्षय कुमारि संघारि रथ स्वारथी लंक आतंक को कोश भारयो ॥२५५॥
कोपि ले कटक घन नाद भट कोटा पे बान घमशान के भान झप्यो।
लूम को लस्ट दे पोस्ट रथते पटकि हाक सुनि धाकते कटक कम्प्यो ॥२५६॥
डासि दृज फासी खल गासी गढ लेगयो कह्यो घन नाद यह कोश आयो।
सीस दश शीश करि दनुज सासन दई तेल तिन सूत लुमे लिपायो ॥२५७
धूम केतु धरि पूंछ जब पर जरी, देह सुक्षम करी फासी डारी।
उच्छरी उही वेरि कपि फेरि ऊंचो अटा फेरि के लूम लंका प्रजारी ॥२५८
हाक की धाक से गर्भ त्रिये गिर परे भजत भिरर मरे भो भयंका।
नारि बिल लाय बिललाय चहूं दिशी चली लायही लाय की हाय लंका॥२५९
अनलकि ज्वाल बेहाल करी असुर पुर फान्न भरि जलधि लगुंल लायो।
गर्भ दशकंध को गारि पुर छारि करी मात जल जात पद माथ नायो॥२६०

ने दई मात ले बात सुत माथ धरी कूदि दधी किलकला शब्द कीनो।
तहिं ध्याय कपि भाल परिपाय कहि पान को दान हनुमान दीनो॥२६१॥

(दोहा)

उप बन फल करिके प्रसन्न, गये सुकंठ के ग्राम।
भेट सकल बुजे कही, धनि बातज बल धाम॥१३५॥

(छपय छन्द)

जुरि जु कंठ जुवराज भालु कपि हनुमदादि भट।
कृपा सिन्धु सुख कंद बंदि प्रभु चरण अक्षय बट।
सिये सुधि कुशल सुनाय लाय प्रभु मुख अगारि मनि।
खल निवास तनु खीन दीन निज पद वीहीन दिन।
बिन दरश आहि वैदेहि के उबरे किम असरन सरन।
सजि चलहुँ भालु कपि दल सकल हति दानव हिये दुख हरन॥१२॥

(दोहा)

दधि उलंगी लंका दही, मारयो रिपु दल मान।
सिय सुधी लायो तोही सम, हितु कौन हनुमान॥१३६॥
सुन समीर सुत वचन प्रभु, कौन हुकम कपिराज।
उठि लंगूल कपि उछरे, भूव अकाश छबि भ्रांज॥१३७॥

(छपय छन्द)

गरजी कीश घनघोर सोर चहुँ ओर भालु सजी।
मुख मृदंग धुनि चंग जंग त्रई बंग बंब वजी।
व्यंग व्यंग बहु रंग हूहदे भूह जूह जुरी।
उडत भुरि अशमान भान सुर जान धुरि भरी।

करि करि प्रणाम प्रभु पद कमल चलत अष्ट दस पदम दल।
दल मलत सिन्धु जल थल विकल उथल सुथल तल वितल थल ॥१३॥

(सवैया)

हनुमंत महा वलवंत सदा भगवंत अनंत के भाव भरे।
रघुनंद विहु जग वंदन कु परि पांय उठाय के कंध धरे।
वनिराम विमान उड्यो असमान यही उर आनिके ध्यान अरे।
उतरे प्रभु सागर के तट आय सुनाय विनये मोहि धन्य करे ॥२४॥

(दोहा)

भक्त विभीक्षन सरन मो, दई त्रास दश शीस।
करि आदर श्री मुख कही, आउ लंक के ईस ॥१३८॥

(सवैया)

श्री मुख राघव सासन दे सुनि सागर सेनि कुं शीघ्र उतारो।
शेप कही इम मुढ न मानत सारंग सायक पानि सम्हारो।
वान ग्रह्यो दधि विप्र भयो विनियो प्रभु सौं अफराध विसारो।
नील निले सजि सेतु सिले सु भले कपि सैन समेत सिधारो ॥२५॥

(इति श्री सुन्दर कन्ड समाप्त)

अथः लंका कान्ड प्रारंभ

सागर मुख के वचन सुनि, कही इम करुणा कंद।
सेतु कुवर के सिन्धु मे, वांद हूं मर्कट वृन्द ॥१३९॥

(सवैया)

शासन राघव को सुनिके धुनि के दल कीशन को उठि धायो।
दौरि दनु दिशने वर जोरि वटोर लिये जहां पाहर पायो।

नाम के जोर न बोरि सके जलघोर सुरासुर शौर सुनायो।
बेत समेत दलु दनुजे इहि हेतु सो बारिधी सेतु बनायो ॥२६॥

(दोहा)

बेदा हुति मुनि बोलिके, बिरचे विविध विधान।
रामेश्वर राजित किये, निज कर राम निधान ॥१४०॥

(छन्द लगु नराच)

बिराज श्री उमा बरं, कृपा निधी गुना करं।
महा दयाल मिस्वरं, अनादि आद इस्वरं ॥२६२॥
दरिद्र थूल दाहनं, वृषानु कूल वाहनं।
ग्रिवा भुजंग धारणा, जमादि ताप तारणा ॥२६३॥
जटा किलोल जान्हवी, भवादि नर्क भावनी।
विभूति भूषणां बरं, हमेश पातिकं हरं ॥२६४॥
त्रिशूल पानि तेजसी, वृति बिराग में बसी।
लिलाट चन्द्रमा लसे, कपाल कंठ में कसे ॥२६५॥
बिछाय खाल बाघ की, निहंग ओंर नाग की।
अखंड मन्ड आशनं प्रभो विभौ प्रकाशनं ॥२६६॥
नगीस निर्जरा नरे, पदार विन्द में परे।
उदार विनती अति, विकासो भक्ती की वृति ॥२६७॥

(दोहा)

गंगा धर शिर गंग जल, अधम चढावे आय।
मो सम गिने महेश कुं, सो मोमे मिल जाय ॥१४१॥

(छन्द वे आकरो)

अरचन करत अनंद वढयो अति, रखि रघुवीर देव शिव पद रति ।
कल्प वृक्ष के पुष्प धारि कर, हरसित वरसि कहत हर हर हर ॥२६८॥

(दोहा)

वंदि चरण वृषकेत के वन गवने मुनि वृन्द ।
पार चलहुं पयोधि के, कही तव करुणा कंद ॥१४२॥

(छन्द त्रोटक)

सुनि शासन सैन समूह सजे, गिरी कानन भाल कपीश गजे ।
भट भंप धरा धर कंप भयो, छवि लाद लगूंल अकाश छयो ॥२६८॥
उडी भालु चमु असमान अरी, किधो पाहर पंख विरंची करी ।
विहु वोरि जलाशय जोरि वली, उमंडी जल जंतुन की अवली ॥२६९॥
दल राघव को हम हुँ दरशे, पद पंकज की रज कुं परशे ।
इहि आस सुपास ही सेतु अरे, कपि जुत्थ उतारन पंथ करे ॥२७०॥
चढि सेतु समूह समेत चले, अति वीर वली नभ कूं उछले ।
भट अंग भिरे वहु भीर भई, पद पिंठी कम्मठ ही दोर दई ॥२७१॥
कपि केहरी नद्द-विहद्द करें, भव ज्यूं जल जाल ही फाल भरें ।
छल हीन हरी गुन अंक छये, गरजे करि वारिध पार गये ॥२७२॥

(दोहा)

श्री रघुनंद सुवेल गिर, उतरे आनन्द कन्द ।
दल चहु दिशी घेरा दिये, सोहत वल को सिन्धु ॥१४३॥
गर्राज कोदा कानन गये, प्रभु मुख शासन पाय ।
विरत देख तंहि विपिन में, धरे दनुज कह धाय ॥१४४॥

(सवैया)

भूमि लंगूलन ते झटके पटके उरदे डग भूतल डाटे।
राम कहाय विजय रशना दशना धरि नाशिका काटन काटे।
आनन बीच अगुष्ट डसे धरवाय नचाय के नाच निराटे।
चाहत जुध उछाह उमाहत बाहत पब्बय लंक की बाटे ॥२७॥

(दोहा)

कही दनुजे दशकंध से, सागर बाध्यो सेत।
उतरि कटक आयो इते, अजहूँ आप अचेत।
उचरत सहज प्रकाशलू, अति बल कीश अशंक।
काल रूप तुव कटक पे, लेहि पलक में लंक ॥१४६॥
हुलसी दशासन हसि कह्यो, कहा बिचारे कीश।
निर प्रहार निश्चर निकर आहर भेज्यो ईश ॥१४७॥

(छन्द त्रोटक)

मद अंध गयो निज भौन महा, त्रिये आनि गहे पद दोरि तहा।
बहु प्रीत विनीत सजी विनती, पशु पाल कृपा यह जानि पती ॥२७३॥

(सवैया)

प्रान पति जुवती जिन जानि सति सिय है जिन ये जगु जायो।
ये निज ब्रह्म निरंजन है तिम अंजन के भव तोहि भ्रमायो।
देहुँ सिया पद लेहुँ सनेह के भूरि कृपाते भयो मन भायो।
संत मतंत कहंत करो नतु अंत दयंतन को चलि आयो ॥२८॥
तू तिय भिती प्रतिति न तोहि अजोत भुजा मम कृत अथा है।
में मघवा रिपु सो सुत पाय मझाय बली तिहूं लोक मथा है।

वानर नाल ये काल निशाचर खाय अघाय के जुत्य जथा है।
दीन पति दुहु क्षीन कहा यह बांम को हीन स्वभाव वृथा है ॥२६॥

(दोहा)

सुघर विवेकी जे सभा, कही शिक्षा दस कंध।
सुमति निवारि ठान ही कुमति, अभिमानी मतिअंध ॥१४८॥
सुख सारन कहि सकल दल, वल विक्रम विस्तार।
द्रस्सी कोस ध्युति दिर्घता, गिन तन गर्भा धार ॥१४६॥
रच्यो अखारो रैनि में, शिखर उतंग सुरारि।
दंपति भूषन डारि प्रभु, निज विसी खन प्रहारि ॥१५०॥

(सवैया)

बालि के नंद विवेक कविन्द्र उठयो रघुनंद को आयुष पायो।
पेठत लंक में सैठि परयो अरि को सुत मारि सभा विच आयो।
वेन को वानते वेध्यो हियो पद रोपि सभा रिपु धर्म गुमायो।
धीर गहीर, वली रघुवीर के निरज पायन शीश निमायो ॥३०॥

(चौपाई)

अंगद कूदि कटक मह आयो, सुभट लंक संक्षेप सुनायो।
दल पति रघुपति शाशन दीन हूं, कीश भालु रन उच्छिन्न कीन हूं॥४८॥

(छन्द त्रोटक)

कपि भालु वली रन रंग कियो, भुव व्योम पताल अतंक भयो।
भट भालु कपि दल भीरु भई, छिति व्योम लंगूल नी छोभ छई ॥२७४॥
भर घुजि पताल लगी घुकि के, रवि को रथ व्योम रह्यो रुकि के।
दिशी दिग्गज कम्पी कमंठ दव्यो, फन सेनक कोरम पीठ फव्यो ॥२७५॥

निज दंत नखा युध नाहर से पुष्पावली ज्युं कर पाहर से ।
उछलंत उतंग अकाश अरे, भट ज्यूह अरु हनि व्यूह भरे ॥२७६॥
हलकारी प्रचारी के हाक दई, ललकारि के लंक को घेर लई ।
भट रावण के करि क्रोध भिरे, जनु जंग महा जमराज जुरे ॥२७७॥
झटके पटके कपि क्रूर तहै, बर बीर किते धर बुर तहै ।
पटके कई पंजन फारत है, दध बांच किते खल डारत है ॥२७८॥
कहीं रुन्ड नचे बिनु मुन्ड किये, दुई फार किते भूव डारि दिये ।
भरि बत्थनी झुत्थ निझुत्थ भटं जनु मल्ल अखार हकार जुटं ॥२७९॥
धरि भूधर केयक धावत है, मरदे गरदे न मिलावत है ।
केई भाल विशाल कराल भये, दनुजे दल ढाहि बिछाहि दिये ॥२८०॥
करि हुँह समूह नी कूदि कपि, नर सीध मनु भव लंक नपी ।
महि पुरित श्रोणित कीच मचे, निधी पायके कंकरु गीद्ध नचे ॥२८१॥
जही भेर व जोगनियां जुरि के, अन्हवावत रुद्र अचे अरि के ।
करि ताल विशाल कपालन के, बहु नाचत वृन्द बेतालन के ॥२८२॥
रज निश्चर सायक जाल रची, मघवा जनु बुन्दन मार मची ।
छिति व्योम दशु दिशवान छये, भट भालु कपि भयभीत भये ॥२८३॥
भय मान के कीशरु भालु भटे, रशना रघुनंदन सर्न रटे ।
रघुनायक सायक चांप सजे, भय पाय निशाचर जाय भजे ॥२८४॥

(दोहा)

सकल विकल होय सरन गृही, भालु कीश भय पाय ।
प्रबल विजय पुनि पाय है, खल दल कुल हि खपाय ॥१५१॥

सोय निशी रघुपती सरन, कियो प्रात उठि क्रुद्ध ।
कीश भालु कर धरी कुधर, विरचे जुद्ध विरुद्ध ॥१५२॥

(छन्द हनुफाल)

करि क्रुद्ध भालरु कीश, लंगूल साजे शीश ।
हरि पाय परि करि हूँह, कुल दनुज लंक हीं कूह ॥२८५॥
किये हुक्म इत दश कंध, दिये दल निशाचर द्वन्द ।
उमंडी-अनि अति जोर, घुमंडे मनु घनघोर ॥२८६॥
भट भिरे कीशरु भाल, करि क्रुधरु मार कराल ।
फिर उदर नखते फारि, दिये गल अन्ता वरि डारि ॥२८७॥
घन दनुज कियेउ कु घाटि, कई कर्न नाशा काटि ।
अति हाक दे हनुमान, गढ लंक चढो करी गान ॥२८८॥
जुवराज गढ पे जाय, मर्दति शोरं मचाय ।
वर जोर जय रघुवीर, धुनि करि दोहुँ धीर ॥२८९॥
निश्चर लियेउ नाराचि, रन विवध वानिन राचि ।
मुदगर गदा असी मार, पटके त्रिशुलन प्रहार ॥२९०॥
बहे रुधिर शर वर जोर, घमशान भो अति घोर ।
भरि रुन्ड मुन्ड निरूम्म, घायली रहे कित्ते घुम्म ॥२९१॥
वैताल ताल वजात दिन रैन सो दरशात ।
क्रुद कंत भालरु कीश, सजि पाय निश्चर शीश ॥२९२॥
पंजा निते सिन्न फारो, मुख तोरि लानत मारो ।
नाशाति कानरु नेन, हनि नखनते जनु हेन ॥२९३॥

अकुलात निश्चर अंध, किल केति वानर कंध।
पकरे ति हात पशारि, भुज तोरि दे भू डारि ॥२९४॥
शिर टोरि डारि समुद्र, रुन्डे भभक्ती रुद्र।
हनुमंत रिपु दल हेरि, खरि हानि किय खल केरि ॥२९५॥
लंगुर अंग लपेटि, सुभटे समूह सिमेटि।
उत बंग व्योम उछारि, दल मलित भूतल डारि ॥२९६॥
मच रही मारो मार, दल भेदि चारों द्वार।
परि भीरि पछिम पोर, घन नाद को रन घोर ॥२९७॥
हनुमत द्वे हंकार, पटके प्रचारि पहार।
चंचल रू स्यंदन चूर, भय स्वारथी भक भूर ॥२९८॥
हिये लात दे हनुमान, परि किते मुरछित प्रान।
असुर अचेत उठारि, दश कंध अग्र ही डारि ॥२९९॥
पल द्वेक में सुधी पाय, भट उड भिरी उही माय।
उडी गये व्योम अजीत, रचि जुद्ध दारुण रीत ॥३००॥
बरसे तिहुँ विधी बान, सावन ह बुंद समान।
पल रुधिर छारि परवान, भू बरसी कौन भयान ॥३०१॥
अज्ञात मोह अरुढ, माया रची अती मूढ।
किये कोपि तिमिर कराल, भये विकल बानरभाल ॥३०२॥
जगदीश सनमुख जाय, सट कटक बैन सुनाय।
कलिपाल गृही को दन्ड, पल में हरे हरि पाखंड ॥३०३॥

(दोहा)

वन्दी चरण रघुवीर के, लछिमन धनु शर लीन।
विपिन वैधि निश्चर स्वमुख, कृपं सुकि तरु सो कीन ॥१५३॥

(छन्द मुक्ती दाम)

उठयो धनु सायक साजि अनंत, बलाहक वानन को वरसंत।
चले घननाद कि देहनी घाव परे तनु रुद्र पहार प्रभाव ॥३०४॥
निहारि निशाचर कीन निधान, प्रहार प्रचंड हरे सम प्रान।
निशाचर सागि ब्रम्हारि निशंक, उछारि अनंग के मारिसि अंक ॥३०५॥
महा भट भूतल मोरछा मानि, तवे घननाद ही सायक तानि।
ग्रहयो पद जामुन्त लीन गिराय, भुजा बल भूतल भूरि भ्रमाय ॥३०६॥
प्रचारि प्रचारि कै भूमि पछारि, दियो दशकांध मुका कर डारि।
बली हनुमंत उडे इहि वेर, द्रुनागिरी लाय करी नहीं देर ॥३०७॥
अनंत सजि वन पाय उठाय, महा भट संकट शीघ्र मिटाय।
कृपा निधी श्री मुख कीन कहान, हरयो, दल को दुख ते हनुमान ॥३०८॥
निहारि वेहाल परयो घनगाद, वहु दशकंधर कीन विषाद।
जगाय लियो घट कर्न ही जाय, महोख किते मद दीन मंगाय ॥३०९॥
कहि सिये लावन की करतुती, अरे जिम आसुर कीन अभूति।
वदयो पुनि यूं घट कर्न विचार, धुन्न्यो सिर बंधव दीन धिकार ॥३१०॥
उठयो घट कर्न मरोरत अंग, विलोकि भये सुर जानि विहंग।
परयो मिली रावन से करि चाय, परों रघुनंदन पंकज पाय ॥३११॥
उन्ही पद की महिमा अनुरूप, भयो पद भेट भिभीषन भूप।
परि पद पंकज धुरि परवान, वनि रिषी की पृये वेद वखान ॥३१२॥

उहि पद वेद विलोकहुँ आज, मया करी आप मिले महाराज ।
धर्यो उर ध्यान चल्यो मग धाय, पर्यो तब दोर विभीषन पाय ॥३१३॥
उपारि लगाय के बन्धव अंक, निशाचर बंश कियो निकलंक ।
उहा चली जाउ न लाउ अहार, सखा मोहि शत्रु न मिन्त्र समार ॥३१४॥
कहि उहि आयके राघवे कान, यह घट कर्न बलीष्ट असान ।
लिये सुनि कोश नशीश लगूल, पहारिन मार किये प्रतिकूल ॥३१५॥
बयुक्ख नखा युध दंत बिदारि, बरसत श्रोणित ज्यूं घन बारि ।
प्रचारि के भालरु कीश प्रचंड बटोरि के जुत्थ बिजूथ बिलंड ॥३१६॥
महा भट लिलो किते मुख मेलि, करे कपि काननी घ्राणनि केलि ।
किते कपि मर्दनी भालुन कीन, लुकाय के कांख कपि सहि लीन ॥३१७॥
दबाय चल्यो भट लंक दिशान, खस्यो भव पे कपिराज खिशान ।
गयो चढि कूदि के शीश गरज्जी, शिखेन्द्रक घ्राणन युद्ध सु सज्जी ॥३१८॥
भये घट कर्न भयानक भेख, बिरंचय रचिये जुद्ध विशेख ।
सिघारत कीखरू भाल समूह, करे दश कंधर की जय कूह ॥३१९॥
गिरावत धावत भो लग गाजि, भयानक देख चले कपि भाजि ।
लिख्यो घट कर्न बिजै कर लीन, दशानन सैनकुं शाशन दीन ॥३२०॥
कढयो दल दानव कोप कराल, सराशन सांजि हत्यो सुर पाल ।
भयो रघुनंदन संमुख भीम सदा शर दक्षन संगम सीम ॥३२१॥
घले घन घायन धावत चूमी, भुजा शिर डारि दिये हरि भूमी ।
रुक्यो नही ध्यावत शंमुख रुन्ड, खल तनु राम कियो बिब खंड ॥३२२॥
नरोत्तम कौतिक कीन नर्वान, लग्यो सर तेज भयो हरि लीन ।
बजावत दुंदभी देवन वृन्द, रटे जय जयति सदा रघुनंद ॥३२३॥

(दोहा)

कुम्भ फरन के मरन को, सुनि दशकंधर सोर ।
सिरधुनि उरधरि ताशु सिर, बिलपी विहोरि बिहोर ॥१५४॥
सुनि विलाप दश कंध को, गर्जी के ही घननाद ।
प्रात भालु कपि को प्रलय, वाद हि पिता विषाद ॥१५५॥

(छन्द पधरी)

उच्वरिये वचन घननाद ऐह, निशी धाम वाम संगी कियेउ नेह ।
निशी विगत प्रात वज्जे निशान, भट गज्जी सज्जी मो भू भयान ॥३२४॥
फट फटेउ भालु दल प्रबल कीश, इत राम जयति उत असुर ईश ।
धरि कुधर कीश पटकंत धाय, मर्दति दनुज गर्द ही मिलाय ॥३२५॥
नख उदर फारि डारे निशंक, अवर्न पछारि कुडती अंक ।
गृही केश ग्रीव गिर पे गिराय, भट भेरि शीश शीशे भिराय ॥३२६॥
फेकंतचरण ग्रहि के फिराय, जल दधि अथाह विच परि है जाय ।
कर ग्रहो कृपान अति कोप कीन, ललकारि कानि घननाद लीन ॥३२७॥
वरसे प्रचारि बहु विकट वान, मिल वृष्टी बुंद भादु समान ।
ननते गिरंत पल रुधिर छार, झमकंत भूमि ते अनल झार ॥३२८॥
उटी भ्रात बहुरि भूवते अकास, विचरंत असुर माया विकास ।
अध भुत रूप धरो वपु अनेक, दिश दिशानी द्वन्द भट परत देख ॥३२९॥
अगंद अनंत हनुमान अंग, दिये विसम वान किन्है कु ढंग ।
मचि भालू कीश दल मार मार, परिनाल असुर कपि मनु पहार ॥३३०॥
टटि व्याल फांसी हरी कंठ डारि, साल्है अघात गरज्यो मुरारि ।
जय ही प्रचारि उहि जामवंत, तिरसूल हनि दानव तुरंत ॥३३१॥

भंजी त्रीशूल हनी मुस्टी भाल, वशुधा पछारि कीने विहाल।
पद पकरी फेकि दसशीश पास, तहीं देख असुरपति भई त्रास ॥३३२॥
उरगारि बोलि ईत राम ईश, खल अर्ग भजे देखत खगीश।
दुंदभी व्योम निरजरनि दीन, पुष्पोणी बरसी बहु हरस कीन ॥३३३॥

(दोहा)

जब वाकी मुरछा जगी, उठयो, इस्ट आराधि।
राम लखन रन में हनु, सक्ती सरन मख साधि ॥१५६॥
जगत मातु गृह जाय के, मदिरा महिष मंगाय।
रुद्र आहुति नई वेदि रची, ल्यो निजी चरन लगाय ॥१५७॥

(छपय छन्द)

जग पाल हि कर जोर विनय अब करिय विभीखन।
हवन सिद्ध जो होय तेज खल बढ़ही तत्त खन।
बेगि मरहि नही बीर सुभट सिर मोर शक्र जित।
तासु तेज तनु तचही पुहमी पाताल नाक पित।
कपि भालु जासु मख बध करही हुकम देहुँ आरति हरन।
मख भृष्ट होहि तब मानि यहु मेघनाद निश्चय मरन ॥१४॥

(सवैया)

आयसु पाय सियाबर को कपि धायके कूदि परे मख मांही।
ओविके बार चपेटि के मार उछार दई सब सोज सजाही॥
पीठ घसीट ढकेली के ढीट सकेलि भिरी सिकता सब ठाहीं।
तोपी त्रिशूल ही कोपि कढयो कही जहों कहां बचिहो कहूं नाही ॥३१॥

(छन्द नाराच)

लिये त्रिशूल क्रोध मूल कीश थूल पे कढयो ।
मनु कराल काल सो विशाल भूधरा हल्यो ।
प्रचारि के हकालिके डकारि सूल डारियो ।
अपार रुद्र धार प्रस्त छार भू प्रछारियो ॥३३४॥
अलोप वीर गज्जी धीर वुठि छीर व्योमते ।
किये अचेत कीश खेत धुमकेत भोमि ते ।
कभु दिपे कभु छिपे रुपे कबु करारि में ।
भुके करूर केहरी घके गयंद धारि में ॥३३५॥
प्रहार भू धरान के सुमालु कीश हू करे ।
खरो सुमेर खेत मेन मेक जुध ते टरे ।
डरे कपि समूह मालु देखि के दयंत कू ।
उठे अनंत ज्यूं क्रितान्त सत्र जीत अंत कू ॥३३६॥
प्रणाम राम से करि सम्हारी के शरा सने ।
निकारि त्रानते निदान वान प्रान त्रासने ।
कमान तान कान के प्रमान अंक छेदियो ।
उडाय दीन शीश बाहु भुमी वान भेदियो ॥३३७॥

(दोहा)

बाहु परी उदी वाम ढिग, शीश लिवा गये शेष ।
हरप अमर पुर लो हुवो, वरसे पुष्प विशेष ॥१५८॥
सत्र जीत की मृत्यु सुनि, दुखि भयो दश कंध ।
बिलखि पर्यो भूमि विकल, अपवादी मति अंध ॥१५९॥

(छपय छन्द)

बुजि लिखत भुज बनं समुझि पति मरन सुलोचन ।
जाचि लियेउ सिर जाय पाय महिमा भव मोचन ।
परि पद शाशन पाय आय रचि चिता अनल भय ।
श्याम शोश के संग भस्म तन कियेउ त्याग भय ।
श्यामा सुरेश हुँते सरष सब तन त्रन सम तजो दई ।
धनि नारि धर्म पतिवृत परशि भवन तीन प्रभुत भई ॥१५॥

(दोहा)

मघवा रिपु प्रिय-मृत्यु लखी बिलखी कही भूज़ बीश ।
बिरवे विस्व बिरंची में अल्प रंक अवनीश ॥१६०॥
अहि रावण को यादि कियो असुराधिप गृह आय ।
तिहो छिन प्रगटे तासु ढिग संग्रम कही समुझाय ॥१६१॥

(छपय छन्द)

सुनि समंध दशशीश बेश तिही रचेहूं विभीक्षन ।
अहि रावन अधरात भेदि भट कीश भालु गन ।
पद प्रणम्म सचु पाय धाय दोहु बन्धु कन्ध धरी ।
गगन पंथ किये गवन भवन ले गयेउ मोद भरी ।
सजि कर समाज निश्चर सकल बलि विनोद विश्वेश्वरी ।
द्दग देखि दनुज दारुन दलन हनुमान सुमरे हरी ॥१६॥
वायुनंद तिही बेर प्रेरि देवी पताल मह ।
विकट रूप मुख बाय लिये भक भोग्य जोग्य जह ।

अहि रावन सिर अनल डारि संघारि सकल दल ।
हाक धाक अरि नारि गर्भ दिये डारि झारि खल ।
वल थूल सूल निरमूल करि मकरद्धज महीपाल किये ।
धरी क़ंध लाय रघु नंद जुग कियेउ दर्प कपि कटक हिये ।।१७।।

(दोहा)

अहि रावन कुल दल अनल, हवन कीन हनुमान ।
विकल भयेउ सुनि वीसभुज, अल्प आयु उर आन ।।१६१।।

(छपय छन्द)

अहि रावन को अंत सुनत दस कंध शोक किये ।
उही अवसर चलि आय देव रिषी सुत संदेस दिये ।
कारन कवन कलाप आप इम करत असुर अति ।
नारान्तक सुत निडर समर दुसर सुरपति जिति ।
इहि वेर पत्र दिजे उन्हे अमित सुभट दल आय है ।
रिपु राम लखन कपि जिती रन प्रवल विजै पद पाय है ।।१८।।

(दोहा)

पत्र दियो लखि पुत्र कुं, धके दूत तिही धाम ।
पेखि सभा सचुपाय के, सादर करी सलाम ।।१६२।।
पाय पिता को पत्रिका, वुज्यो समर विहार ।
भुज फरके बहु भटन के, पुहमी तजे पहार ।।१६३।।

(छन्द मोत्तीदाम)

नरान्तक पत्र सुन्यु किये नछ, सजे दल सम्मर कु गुनि स्वछ ।
बजे रन तूर गजे गज वाज, भई छवी इन्द्र घटा जनु आज ।।३३८।।

चले भट ठठ चमु चतुरंग, जुरे कब जंग उमंगन अंग ।
धरे मन चाव ओहो निशी धाय, निशाचर लंक धरा नियराय ॥३३९॥
विभीक्षन भेद दियो तिहीं बेर, कृपा निधो ये सुत रावन केर ।
महा भट जूह लिये संग मूढ, यह अभिमानी है अज्ञ अरूढ ॥३४०॥
सुने यह बेन समीर कुमार, परयो दल में जनु कूदि पहार ।
लिये खल जुत्थ लंगूल लपेट, हने भट व्योम उछार के हेट ॥३४१॥
किते दल पायन कीन पीशान, दिये केही फेक विशान-दिशान ।
हने दल केतिक वीर हकारी, बिरारे किते दनुजे बबकारी ॥३४२॥
चपेटन तोरि किते दल चूह, झफेर फरेर किते खल जूह ।
बली मुरछाय के सेनि बनाय, सुरासुर जै रघुवीर सुनाय ॥३४३॥
गर्ज्यो असुराधिप ग्रभ गुमाय, परयो कपि श्री रघुनंदन पाय ।
प्रभु कर शीश धरयो कर प्रीत, उठाय कही रण होउ अजीत ॥३४४॥

(दोहा)

उठे समर खल दल उते गये लंक पति गेह ।
सादर सनमाने सकल सुत पितु किये सनेह ॥१६४॥
पितु की आज्ञा पाय के चढो सेन चतुरंग ।
इत नारान्तक दल अचल, उत कपि भालु अभंग ॥१६५॥

(छन्द भुजंगी)

चढे साजि के सेन युं रेन कारी, चढी लंक ते ज्युं घटा मेघ काली ।
धरे शीश लंगूल कूं कीश धाये, अरि व्याल झुन्डे मनु स्यंघ आये॥३४५॥
जुरे कुधरे से भिरे जोध जंगी, अखाये अरे मल मानो अभंगी ।
किते दानवा कीश के शीश कट्टे, घने कीश दानेन के मन्जी घट्टे ॥३४६॥

गही तोमरे शुल दयंत घेरे, ढहावें गिरे कीश रजनीश ढेरे।
जिते निश्चरा जाय जंगे जुरे है, पहारे मनो स्याम भूमे परे है ॥३४७॥
पूहमी किते रुन्ड-भुन्डे पछारे, धधक्के धरापे नदो रुद्र धारे।
किलक्के करे खपरे धारी काली; महामोद भिने फिरे मुंडमाली ॥३४८॥
किते मुन्ड के ताल बैताल किने, भखे भूत जे मांस के ग्रास भिने।
रचि भूमि रुद्र मखी रुन्ड मुन्डे, बहे जात धारा अधार वितुन्डे ॥३४९॥
जबे माल शाखा अगे मिनि जाने, तबे राम को मंडपे बान ताने।
छुट्यो बान लें प्रान सो त्रान आयो, मनु भूधरा धंश भूमे गिरायो ॥३५०॥

(सोरठा)

नरान्तक के नाश, त्राश मिटी त्रिहु लोक की।
अमर पुरी मन आश, वरस पुष्प जय जय वदत ॥१२॥

(दोहा)

सुरपति जांकि, शंकते, सकुचत सुरन समेत।
सो दशमुख सुत मरन सुन; उरवी पर्‌यो अचेत ॥१६६॥
जब रावन मुर्छा जगी, उठयो मरोरत अंग।
बढी भुजन में वीरता, अक्षिनी अनल उमंग ॥१६७॥

(छपय छन्द)

उमंगी वीरता अंग जंग कह स्यन्दन सजिये।
तबल तूर ठामंक घोर घर अम्बर गजिये।
शक्ती सेल तिरशूल खगा मुदगर सर खंजर।
कौमोदिक को मंड धारी कर चौकट वीरवर।

करि करि सलाम निज स्याम कह ठाम ठाम भट कूदि थल।
दसशीश बीस भुज अतुल बल चढे अचल दल अबल खल॥१६॥

(दोहा)

खग सम्हारि खल दल अबल, कढे लंकते कोप।
उठे कीश अरु भालु अति, तरज कुधर करि तोप॥१६८॥

(छन्द मोत्ती दाम)

कढयो दल बीस भुजा अती कोप, तरज्जिये कीश इते गिरी तोप।
अरे दल दोय ही जोध अपार, मचे बिहु ओर न मार नो मार॥३१५॥
उठाहत पाहर बाहत ऐक, अरि दल चुरन होत अनेक।
ऐके नक फार स्ववा अरू अंत, कलेज बिदारि के टुक करंत॥३५२॥
धरे पद ऐकनी धूसति धूर, चपेटन मारि करे चक चूर।
हरे अरि आन करे कपि हाक, धरो धरि मारहूं मचिये धाक॥२५३॥
पटूकत पाहन पे गहि पाय, बिदारत ज्युं दध माट बिराय।
भिखवत मत्थनि मत्थनि भेट, लडावत केतिक लूम लपेट॥२५४॥
इते असुरे दल वीर अरुढ, बली बहु बानन को भर बूठ।
लगे तनु कीश मनु शर लाय, पगी तनु पीरि चलेति पराय॥३५५॥
दशं धनु तानि दशाशर दोरि, बरक्खीये बान बली बर जोरि।
भिदेसर तीक्षन बानर भाल, परे रन भूमिये वीर बिहाल॥३५६॥
प्रभु प्रति निश्चर धीश प्रचारि, अहं जुध क्रुधत बेन उचारि।
नहूं खर दुक्खन हुँ घननाद, नहूं घट कर्न मरीच बिराध॥३५७॥
महा भट रावन जानिये सोय, तपी रन भूमि खिलावहूँ तोय।
इति कही बानन को भर मंड, बली कपि भालुन जुत्थ विहंड॥३५८॥

सज्यो रघुनंदन पे सर जाल, मनो भरि माद्रव की घनमाल।
उठे धनु सायक ले जगईश, वधे दशहूं शिर ओ भुज बीस ॥३५९॥
कटे भुज शीश बढावरी कीन, निपात किये पुनि होत नवीन।
वढाय के शीश करी शिव सेव, वढे बहु शीश भुजा वर भेव ॥३६०॥
वढे भुज शीश कियो पुनि कोय, तवे हरी को रथ वानन तोय।
विमीक्षन उपर शक्ति विहाय, तत्तक्षन श्री हरि झेलिये ताय ॥३६१॥
विभीक्षन दौरि गदा उर दीन, परयो धर रावन को वलहीन।
अवेतन श्रोणित उठि सम्हारि, मचि मल युद्ध ही मुष्टीक मारी ॥३६२॥
हुकारि दई नग को हनुमान, भयो रथ सूत भभूत समान।
दई पुनि लात की अंक में दौरि, भयो तरु जेम धनंजय जोरि ॥३६३॥
प्रचारि के रावन कीन प्रहार, उडयो नभ कीश समीर अधार।
गह्यो कपि पूंछ उडयो असमान, कियो नभ युद्ध विहुँ वलवान ॥३६४॥
गिरे वल भूरि परे भुव आय, उडयो फिर जुद्ध जुरे नभ जाय।
इसी विधी जुद्ध विरुद्ध अतोल, वदे विवुधा जय के वर बोल ॥३६५॥
सजे नभ मारग मे जुग सोभ, छटा गिरी कज्जल कंचन छोभ।
हटयो नही रावन संग्रम हारि, समीर तवे हिये राम संभारि ॥३६६॥
परे तव कूदि के वानर भालु, विदारत मारत कीन विहालू।
चलि जब देखि के वानर जूह, सिहारन वरुथनी वरुथ समूह ॥३६७॥

(दोहा)

पटकि प्रवल दल पोहमि पे, समर प्रलय सम सज्यो।
बहुरि विलोकिये वीस भुज, गिरा भयानक गज्यो ॥१६९॥

(छन्द त्रोटक)

घन घोर गिरा असुरेश गज्यो, सुरपाल कृपाल से युद्ध सज्यो ।
छिन एक भयो निरगम्म छली, बहुरे प्रगटे बहु रूप बली ॥३६८॥
जुरि संगर बानर भालू जिते, तनु किन दशानन आप तिते ।
प्रति कीश दशानन संगी परे, द्रग देखत कीशरु भालु डरे ॥३६९॥
इक रावन ते तिहुँ लोक अजै, बहु तेक भये किम होय बिजै ।
जुवराज हनु नल नील जुरे, भट रावन से करि क्रुध भिरे ॥३७०॥
भज बानर श्री हरि शरन भये, हरि एक ही बानते दंभ हये ।
इक रावन देखत देव हसे, बहु फूल सिंधा वर पे बरसे ॥३७१॥
तरक्यो खल व्योम चल्यो तबहो, जुवराज धरा पटक्यो जबही ।
उर में दई लात अरयं दहि के, पद जाय परयो रघुनंद हिके ॥३७२॥
उठि के पुनि देह सम्हारि अरी, दशहुँ धनु बानि बरिष्ट करी ।
कपि भालु कराल विहाल किये, हरषे निज पोरिष देखि हिये ॥३७३॥
हरि चांप दशु भुज बीस हये, निरखे भुज शीश नवीन भये ।
भुज शीश अनंत अकाश भमे, रचि फाग विध्वंतु दराह रमे ॥३७४॥
नभ निरजर जुद्ध छटा निरखे, बहु बान बलाहक ज्युं बरखे ।
पुहमी खल रुन्ड रु मुंड परे, बर बीर बितुन्डन से बिथुरे ॥३७५॥
सर श्रोणित की सलिता सी कली, मच्छ कच्छ कमंधन की मवली ।
लखि भूत बैताल कपाल लिये, कर तालरु मुन्डन माल किये ॥३७६॥
गन जोगनि रुद्र भरे घटके जुरि गिद्ध अंतावरी कूं झटके ।
भुज-ठोकि नचे भट भेर वसे, डिमकात जटा धर डेर वसे॥३७७॥

ललिके भट लुथनि गीध लगे, उडि कंक परे उमंगे उमंगे ।
सुरपाल कमान पे बान सधे, वहु वेर भुजा खल शीश वधे ॥३७८॥
निर्खी भुज शीश सो बाढि नई, वहु रथं कपिभालुन रीश भई ।
पटके गिरी दौरि निशाचर पे, उन डारि वहोरि कियो भर पे ॥३७९॥
भरि वत्थनि वत्थनि वीर वली, दश कंध कपिन की सेन दली ।
वहु वानन वेधि विहाल किये, दिश हूं दिश मुछित डारि दिये ॥३८०॥
प्रजर्यो दल देखत भालु पति, हिये में दश कंध के लात हति ।
पद लागत ही भव मुर्छी परे, कर वीशन कीश किते कचरे ॥३८१॥
भट यों सिर मोर अचेत भयो, लहि सूत रथं धर लंक गयो ।
अंथ्यो रवि भाल कपि उसरे, पर ब्रह्म पदाम्वुज आय परे ॥३८२॥

(दोहा)

ले स्वारथी लंकेश कूं, अंगना धरयो उतारि ।
सजत धनंजय सकल मिल, निज सेवक निजिनारि ॥१७०॥

(छन्द त्रोटक)

भट रावन भोरस चेत भयो, घढते चढि के रन भूमि गयो ।
वहु भेरि न फेरि निशान वजे, सर सूल कमानरु सांगि सजे ॥३८३॥
लखि मेन असग्घुन होन लगे, भहराय के वाहन पिछे भगे ।
सर सेल गिरे गद पद पिछे परे, मिली गिद्ध दसु सिर पे मंडरे ॥३८४॥
गदहा हहराय के हूकत हैं, कई कूकर वायस कूकत है ।
ठठके वर वीर विलोकि तिने, गरभे भरि रावन हूँन गिने ॥३८५॥
रन वान सरासन तानि रच्यो, मघवा मनो वुंदनो मेह मच्यो ।
कपि भालु समूह निहाल कियो, ललकारि पहार कपिन लियो ॥३८६॥

उमड़े घुमड़े कपि भालु बली, दल कारि निशाचर सेन दली।
घमरोल उठि भट जूंह धके, थहराय दशानन जोध थके ॥३८७॥

(दोहा)

कूदि कूधर तरु कीश ले, डारि दशानन शीश ।
घोर वहुरि घायल किये, खल तनु बाढी खीश ॥१७१॥

(सवैया)

कर कोप अलोप भये छिन एक अनेक विरूप किये कपटी ।
जितने हनुमान हंकारि उठे जितनी कपि भालन सैन जुटी ।
छिति झंपी लंगूल अकाश छयो सुनि हाक धमाकनि फोट फटी ।
सर एक हत्यो रघुनंदन ज्युं मनु जाद विवाद को भीर मिटी ॥३२॥

(दोहा)

रावन जब एकहो रहयो, भयो भयानक भेक ।
दश धनुते सायक दिये अरि दल दलन अनेक ॥१७२॥

(छन्द हनुफाल)

दश कंठ दश धनु तान, बरसेति हरि पे बान ।
छत्ति व्योम दिने छाय, मनो मेघ झर मंडराय ॥३८८॥
दिने ति चंचल डारि, पुहमी न सूत पछारि ।
झक झोरि स्यंदन झम्पी किये सोक निर्झर कम्पी ॥३८९॥
रघुवीर अस्व उठाय बहु सूत रत्थ बैठाय ।
जब दुखित देवन जानि, तब राम सायक तानि ॥३९०॥
बरषे ति बानन बृन्द, निश्चरन कीन निकन्द ।
परिके विभीक्षन पाय श्रीराम बिनीये सुनाय ॥३९१॥

इहि नाभी मद्धि नशेश, रही सुधा कुम्भ रमेश।
विच नाभी लागे बान, प्रभु तजही खल प्रान ॥३६२॥
सुनि किये हरी धनु शोर, गरजे ति वारिध घोर।
इकतीस सायक ऐंचि, खल तनु दिये प्रभु खेचि ॥३६३॥
कटी प्रथम नाभी कुन्ड, झरि परे भुज सिर झुंड।
रन परे सिह नचि रुन्ड, प्रभु कियेउ पुनि द्वै खंड ॥३६४॥
सलकंत निकसी लोय, हरी मुख समानी सोय।
जय जयति श्री रघुनंद, वजी दुंदभी सुर वृन्द ॥३६५॥
हरषे विवुध हरि हेरि, कै वृष्टी पुल्यनि केरि।
भुव को उतारन भार, हरी अधम तारन हार ॥३६६॥
कलि पाल करुणा कंद, निश्चरन कौन निकंद।
दश कंध वहु दुख दीन, दलि ताहि अद्र सुख दीन ॥३६७॥
रघुवंश मंडन राम, धनि हो कृपा के धाम।
सुर को सके करि सेव, अज ईस अगुन अभेव ॥३६८॥

(दोहा)

अस्तुति करि हुए अभय सुर, हरसित प्रभु मुख हेरि।
भरि अनंद सुचित भये, कटक भाल कपि केरि ॥१७३॥

(छपय छन्द)

राम दूत युवराज द्वुन्द मयंदादि नीलनल।
कुमुद सुषेन कपियंद दलन रन खेत प्रबल खल।
जामुवंत जगजीत प्रीत रघुपति पद पंकज।
मरकट कटक सिरमोर धीर सुग्रीव धर्म ध्वज।

भट सकल सु बुद्धि संग ले जाहू लखन संजि विध सही ।
भुवपाल विभीक्षन भाल पे करहुँ तिलक रघुपति कही ॥२०॥
श्री मुख शाशन सुनत शेष उठि शीश नवाएउ ।
सकल सभा ले संग लंकगढ आतुर आएउ ।
सिंहासन विधी साज गाज निशान नद्द घन ।
गन्ध्रव किन्नर गान करत जहं तहं जुवती जन ।
मंगल मनाय सुचिपायमन दान विविधीं विधी के दिये ।
सजि तिलक भाल लक्षमन सू कर भक्त विभीक्षन भूपकिये ।

(दोहा)

तिलक साजि संगनि सहित हिये बहु विधी हरषाय ।
लखन विभीक्षन भालु कपि परे राम के पाय ॥१७४॥

(छपय छन्द)

पाय हकूमत तनु पुलकी ललकि वैदेही लायेउ ।
अनिल अंग अनवाय राम बामंग बेठायेउ ।
हरषि पुष्प बहु वरषि विबुध घन बज्जन बज्जय ।
कीश भालु कर जोर सकल सुर अस्तुती सज्जिय ।
लज्जिये अनंग अन गिनत अभा प्रभा न को कोहि पावही ।
सनकादि शेष शिव शारदा गुन नित नूतन गावही ॥२२॥
बानर भालु बुलवाय कही समुझाय कृपानिधी ।
तुम तनु धन गृह त्यागि सकल मम काज कियोउ सिधी ।
जवन प्रबल खल जिति कृति तिहुँ पुर तुम किनी ।
लंकाधिप हति लंक विभीक्षण नृपता दीनी ।

तुम सम न मोर सज्जन सुखद वरनो किम तुम सुजश वर ।
हिय में हृम्हेश वहु हरषि जुत जप हूं मोहि अव जाहू घर ॥२३॥

(दोहा)

प्रभु शाशन धरी शीश पे परी परी श्री हरी पाय ।
ध्यान श्याम घन ह्रदय धरो गये विवध गुन गाय ॥१७५॥
वायु तयन सुग्रीव , वर जामुवंत जुवराज ।
लंकाधिप पुनि राम सिय स्यंदन पुस्पक साज ॥१७६॥

(छन्द त्रिभंगी)

सजि पुस्पक स्यंदन श्री रघुनंदन जव जग वंदन जग पालं ।
हनुमानस हंसा प्रवल प्रशंसा रवि अवतंसा खल कालं ।
नभ मारग लिनो सुर सुख दिनो मंगल किनो देव मिले ।
वन दंडक वन वासो ऋषिये उदासी दर्शन प्यासी पेखिन्चले ॥३९९॥
सुरगन सिरताज वहु विधि भ्राजं तिरथ राजं तुरत गये ।
वनि मंजन वारी भवभव हारी पवन पुतारी पुर पठये ।
भरतही र्कपि भेटे लगी पद लेटे, सव दुख मेटे सचुपाये ।
दल दुष्टन के दरि लंक विजयकरि भवन शुजश भरि हरीआये॥४००॥
सुन वचन समीरं गुन घम्मीरं भरत अधिरं पुर ध्याये ।
श्री रघुवर आये सवन सुनाये मंगल छाये मन भाये ।
सनि आरति सिद्धी वहु सुगंध निधी मनुज उमंगदधि अवध चली ।
इति श्री रघुराजं स्यंदन साजं अवधी समाजं छवि उभली ॥४०१॥
दोहा– उतरयो स्यंदन अवनी पें लखन राम सिय लेखि ।
परे पदन पुरजन प्रजा वाढयो मोद विशेषि ॥१७७॥

(सवैया)

स्यंदन ते उतरे घनश्याम प्रजा प्रभु पायन दौरि परी।
भरतादि प्रजा सब भेटत ही अरचे पद आरतियां उतरी।
बजि नद्द निशान बिहद्दहिलो ध्वनि चंग मृदंग अपंग भरी।
विबुधा पुष्पावलि कू बरषे हरषे लखि भौन प्रवेश हरी ॥३३॥

(चौपाई)

उठी माता आरती उतारी, न्योछावर करि रूप निहारी।
कहती परस्पर बलि बपु वारे, किम रन प्रबल दुष्ट खल मारे ॥४९॥
बारिधी मात भयंकर भारो, तरि गये सुलभ प्रताप तुम्हारो।
भोजन बहु विधी के मन भाये, आतुर पलिका पोढाये ॥५०॥

(छप्पय छन्द)

प्राति अवधपति पौरि अवध वासी जुर आये।
गुरु वशीष्ट बुलवाय सकल जन शीश निवाये।
कही भरत कर जोरि मौरि यह अरज महामुनि।
राज्यतिलक विधी रचौं सकल पुर हरषभयो सुनि।
सजि सिंहासन मंगल सकल मौक्तिन चौक पुरायमही।
रचि राजतिलक रघुनंद सिर कुसुम बरषि जयजय कही ॥२४॥

(सवैया)

निज ब्रह्म निरंतर अन्तर जाम्य अघी केईक केरि उधार किया।
जप जाप किये जतनेन जुगै जुग बोधि महा वरदान दिया।
दुख दारुन देत बिदारन को भव तारन भू लगु रूप लिया।
विधी शारद पैन बने बरनै सरने सुख दायक राम सिया ॥३४॥

* इति श्री राम चरित्र सम्पूर्ण *

-०※ श्री शंकर रूप वर्णन ※०-

(सवैया)

हरखे सुर हेरि पुरि प्रभुता करिखे गिरी केरि फटा विकटा ।
तल सितल गंग तरंग तटा नितटा गती ओघनि फिनी फटा ।
हरखे नर नागर निर्जर नारि रहि रव पुरित भूरि रटा ।
कलिपाल कला नियी केलि करे छिति पेनि असी ओंकार छटा ॥३५॥

(चौपाई)

नर्मद ते दाक्षन गिरी निको, फुनि छवी निरखि लगे जग फिको ।
जुगल पुरि जाकर्य निजानू, विसनु व्रह्म पुर नाम वखानु ॥५१॥

(दोहा)

बीच कपिल गंगा वहै, अति लघु रूप अनूप ।
आस पास आनंद अयन, शंकर भवन स्वरूप ॥१७८॥
विष्नु पुरि में विपनु, मन्दिर मनहुं मयंक ।
मधि विराजि महाप्रभु, नारायण निकलंक ॥१७९॥
करतां जग कैतिक कला, भव हरता अघ भार ।
धरता वहु तनु धरनि हित, श्रुति पुरान तत्त सार ॥१८०॥

(छन्द मोत्तीदाम दश अवतार नाम)

नमो कमलापति केशव कृष्ण, नमो त्रिपुरारि निवारण त्रष्ण ।
मत्ला नियी मच्छव वेद कथान, मथ्यो दधि माधव आप मथान ॥४०२॥
गुनागर मच्छ भये सुन गत्य संपासुर वद्ध कियो समर्थ ।
धनिष्ट विरूप भयेउ वराह, दल्यो हरनाक्ष हरि सुर दाह ॥४०३॥

निर हरि केशरी देह निशंक, भये सुर नागर देखि मयंक ।
बध्यो हिरना कुस वेद विसाद, परिब्रम्ह राखि लियो प्रहलाद ॥४०४॥
भये वपु बावन विप्र विधान, पदं बलि पेलि पताल पठान ।
प्रसोतम भूप विरुध प्रवीन, विध्वंस करि छिति छत्र निहीन ॥४०५॥
पितामहा भूसर रावन पीर, रमापति आप भये रघुवीर ।
चराचर ईश भये दधि चोर, कला रस किरती नंद किशोर ॥४०६॥
भइ भुव पातिक संजुत भार, अलौकिक लीन बुधा अवतार ।
अगाम्मी सुगम्मी सु संक असंक, निवारन ताप हुते निकलंक ॥४०७॥
प्रभु परितोषि त्रिलोकि प्रकास, बिराजत विष्नु पुरि निज बास ।
करे कलि काल के दूर कलेश, सदा अगाह्मति पदं सक्लेश ॥४०८॥

(चौपाई)

हरन पाप पुर मुदित हरि को, पर्व महोत्सव ब्रह्म पुरि को ।
बिहुपुर बिच्चि बिहूं घाट बनाये, लखि छबि नर त्रिये चित लुभाये ॥५२॥
कपिल गंग तहां करति किलोले, मन्दिर शंकर निरख अमोले ।
भव रुज हरन सकल भुतेश्वर, मुख्य मदन मर्दन ममलेश्व ॥५३॥

(द्वादस लिंग वर्णन)

अनभव दुति अधार धर अम्बर, द्वादश लिंगनि विदित दिगम्बर ।
गुन बल निगम नेति पथ गामी, कलिमल कुमति काम रिपु कामी ॥५४॥

(दोहा)

ओंकार आश्रम अनघ, गिर कानन पुर गिद्ध ।
दिना रति फल दायका, पंच लिंग पर सिद्ध ॥१८१॥

(छन्द पदमावति)

गिरि सर जठर पुरि नि परि ब्रह्म सिद्धी नाथ सुर नर सुखदा ।
गौरी सोमनाथ गुन सागर प्रति उमंग मन्दिर उमंदा ।
रन मुक्तेश्वर परम रम्य छवि चकलेश्वर पावन प्रमुंदा ।
ममलेश्वर मन मंजु मुदुल मति पंच लिंग जग प्रणति सदा ॥४०६॥

(दोहा)

ललिता निधी प्रभुता लिये, उज्वल थल उनि हारि ।
कपिल गंग सिर कढि कला, विश्वेस्वर बलिहारी ॥१८२॥

(सवैया)

सपने नृप देखत के सिति कंठ प्रभा दरसी परसी प्रगटा ।
नृप मोद भरे गुनि के मन में मनि मन्दिर सोभ महा सुघटा ।
अवलोकित जोइ उमापति कु प्रणो मार्दिकतेन रहे अघटा ।
विश्वेसर आप बनारस ते अपनाय रहे ओंकार अटा ॥३६॥

दोहा– अवम ओधारन को अवनी, गिरी, त य र गिरीश ।
कामेरो नर्मद कुधर, आश्रय कियो अवनीश ॥१८३॥
परमातम परि ब्रह्म प्रभु, त्रिगुण ताम ततसार ।
विरतारिक संघारि विभु, अवगन तन ओंकार ॥१८४॥
रूपन रेखन रंग रस, निर्मल वपु निज धार ।
चल थल अचल अनंत वर, अमित प्रभा ओंकार ॥१८५॥

(छपय छन्द)

आप रूप ओंकार अवनी आधार रूपं धर ।
गुरु गुन निर्गुन सुगम निगम निरवान निरंतर ।

तेज पुंज गुन तंत संति सुख धाम शिरोमनी ।
बिगत मोह मद विमल अचल अन बहु असोभनी ।
श्रुति शार सिद्धी सकुलित शिव अनंत अभा अबरन बरन ।
बलिहारी निहारि निहारि वपु ओंकार अशरन शरण ॥२५॥
जय शंकर सिति कंठ सर्व सूलि साम्भव सिव ।
त्रिलोचन त्रिपुरारि भीम भुतेश मृडज भव ।
राम सानि सर व्यज्ञ उग्र श्री कंठ उमापति ।
क्रुत ध्वंशी बृषकेत गिरीश हर रूद्र गहन गति ।
प्रमथास्यु पिनाकी पशुपति मृत्यंजय सूरती महन ।
जग बन्धन गंगाधर जटिल दारून दुख दारिद दहन ॥२६॥
कृति वासी निश काम कपरदिशी कयलाशी ।
व्योम केश बिरुपाक्ष ईश ईश्वर अविनाशी ।
प्रभुधाधिप पारिष्ट समर स्त्रिबुक शशी शेखर ।
जटा जूट धुर जटी मीश महादेव महेश्वर ।
धिक रिपु कर्पदी धुनि सुनि धरन हरयो गर्भ हिय तिम हरन।
कलिपाल कृपालु भुत काम रिपु वागदेव बेहद बरन ॥२७॥
खंड पुरश क्षिति पाल नील . लोहित निगमा गम ।
बृमृत्या विष धरन ध्यास्तमा तरशु द्रस्टी सम ।
काम दहन कृष्णानू रेत दानेश दिगम्बर ।
धवल स्थाणो धीर त्रिपुर तोक्षित त्रिशूल धर ।
गिरजे सु गुनज्ञ गिरजापति विस्व नाथ बिक्रम विमल ।
शक्तेस प्रणमित नित पदन ओंकार ध्युति चित अचल ॥२८॥

जय सतरज तम सियल जयति जोगेश वात घर।
जय जल अनल जलनि जयति शशी सूर सरित सर।
जय गिरीवर तन गहन जयति मद मोह कोह क्रम।
जय नव भूरि प्रभाव जयति भयभीत भनी भ्रम।
जय उत्पति पालन गुन अज सिघक सुनि धुनि धुनि शयन।
प्रमदा प्रकास पावन परम ॐकार अनहद अयन ॥२६॥

(दोहा)

शारद गुन सुर नरसु कवि उचरत मति अनुसार।
परम प्रभाव न लखि परत आप रूप ॐकार ॥१८६॥

(सवैया)

चपलाशि कला विहसा चलके हरि के गिरो गोद लियो हरि को।
झुकि भूवर की प्रभुता झलकें, पुलके जनु तेज प्रभा करि को।
ललिता निज मन्दिर की ललिके छलिके उदियातु छिपाकरि को।
धरना निशी वाशर धाकर हूँ गिरिजा ॐकार गुना करिको ॥३७॥

(दोहा)

शंकर महिमा सोधि के कवीन जानत कोय।
हरहर मुख हित से भजे, पाप दूर सब होय ॥१८७॥

(बम्मभोला वर्णन सवैया)

पाहर पुंज अनुभपरे प्रति गुंज करे बहुँ ओरि अतोला।
कानन कुंज अबूज बिये झुकि डारि बियारि दिये झकझोला।
चंचल बात उमंग उछाल करे गन मानजो गंग किलोला।
गोन नरा धन गावत है किलकावत भूवर शंकर भोला ॥३८॥

सोहत गंग के संगम बीच, उतंग अखंडित अंग अमोला।
कूलिन कूलिन देव कला चपला तन ताहि किये जनु चोला।
भूरि प्रकाशित भान समात अलोकिक ठानि मकानि अकोला।
पुन्य प्रभाव ते पावत है झिलकावत भूधर पे हर भोला ॥३९॥
कानन गंग किलोलन प्रभु फोरि कियो शिर लौ गिरी पोला।
निरमल रूप तहां निकस्यो उकस्यो धरि अंग अकार अतोला।
पायल शोभ पताल पगी सिर स्याम छटा भुवलोक सतोला।
निरखत पाप नशावत है झिलकावत पाहर पे हर भोला ॥४०॥
चन्द्रकला उमडी चलके पुलके मदना रिपु शीश पटोला।
रुन्डनमाल हिये रुरके गुरि के खरिके गल गाठि गठोला।
छारहो छार सिगार छयो झुकि नाग रह्यो सिर दे झकझोला।
जट जटा उत बंक अटा परि भूरि छटा दरशावत भोला ॥४१॥
मोर झीगोर मझोरनमे चहुँ ओर पहारन को चक चोला।
कानन भौर किलोल करे बहु ठौरिनी कोकिल सौर बिलोला।
गंग को धार को हार गरे धुधुकार नगारन को धम रोला।
गांध्रव के घन गाजत है रु बिराजतु है भव मंडन भोला ॥४२॥
धीर गहीर समीर सजे छति और अधीर है भीर छछोला।
प्रेम सरोवर पागि रहयो मन लागो रहयो पद पंकज लोला।
बीच में आप विराज रह्यो सुरसाज समाज अवाज अतोला।
दोख दरिद्र को दंडन है अघ खंडन है भुव मंडन भोला ॥४३॥
आवत नारी नरा उमड़े घुमड़े धरि कावरी के घम डोला।
खोलि घटे खलकावत है छिलकावत है शंकर पे छक छोला।

प्रेम से पाय पखारत है ववकारत वम्ब उचारत बोला ।
श्रौर सुने सुख पावत है बिभुकावत हैं भुव के दुख भोला ॥४४॥
पायन धाय जो श्राय परे टरि जाय नरे भव के टक टोला ।
भूतल संपती मावत है सोई लावत है रशना धरि लोला ।
श्रारती वंत पुकारत ही हर फारत दारिद बारि फफोला ।
गंजन ताप लसे गिर पे भव भंजन श्राप निरंजन भोला ॥४५॥
चंचल चाल कराल चढ्यो र मढ्यो जगु पातिक छाय मढोला ।
रंक भये नर रींकत है नही दीखत है कोउ याहि फढोला ।
श्राय गिरीश के पाय परे श्ररु ध्यान धरे धुज धारण धोला ।
टेक दया निधी की न टरे भय भूरि हरे भुव पालिक भोला ॥४६॥
पुरव पाप प्रवाह ते दाह दरिद्र करे नर को फिर दोला ।
मेटन देव मनाय मरोल करो तिहूँ लोक मे ढोक ढमोला ।
देरि करे नही देव दिगंबर हेरि बिहावत गंग हिलोला ।
दारिद दार को छार करे वर राच्छु भंडार भरे हर भोला ॥४७॥
पंच विकारन कोप करयो विसरयो नर विस्व को त्यारन बोला ।
लोभ मदादि रहे लिपट्यो न निट्यो रशना श्रशना नि करोला ।
वाकि विलास रहे बिलस्यो हुलस्यो विसीया रस बोर होलोला ।
ऐसे कुं पेठी है ठेठ के जे पद भेटत ही दुख मेटत भोला ॥४८॥
जोर महा जम कंकर को नरके उरसे भर को निती तोला ।
दंफ की श्रास डरावत है र करावत हैं कई नर्क किलोला ।
भोर पे भोर बटोरी बटोरि के जोरि मगावत भुन्यभुयोला ।
ये जयम कंकार ज्यु उडी जात बयारि को पात भजे मुख भोला ॥४९॥

अघ खंडन पाहर में उकस्यो मही मंडन माधुरी मूरती है।
जप जोग बिराग बसे जिय में हिय में अनुराग हिलुरती है।
दरसे दुख दोष दरिद्र दले परसे घर संपती पूरती है।
द्रग तेज मयंक दिनंकर से शिव शंकर सांवरी सूरती है ॥५०॥

(पंत्र प्रणाम दोहा)

प्रभा प्रकाशण पारुड़ा, आशण करन अभेव।
भाषण आभ पियाल सू, दोष विनासण देव ॥१८८॥

(छपय छन्द)

कुन्डालो गल किया नाग कालो निख रालो।
जटा घटालो जबर फबे उपर पुण वालो।
बिच बिचालो विमल गंग वालो जल गाजे।
दुजाला निरदोष सोस न्यालो सिख साजे।
निवाजे अनंत नारी नरा बारी जूण बिसारणा।
प्रणमो छत्र धारी प्रभु त्रिपुरारी भव तारणा ॥३०॥
डासणा कुस डाड मंडी आसण मृघ छाला।
गल दोला गल संड मुन्डका वाली माला।
भखे भीम भागड़ो कनक आकड़ो कलंगो।
जोग ढीट जांगडा निफट नागडा निखंगी।
उछंगी आभ धारी उमा खमा मदन खय कारणा।
प्रणमो छत्र धारी प्रभु त्रिपुरारि भव तारणा ॥३१॥
सेवा चित संधियो जोग फादियो जुगादि।
कृपासिधु कंधियो अडर नादियो अनादि।

नवहता नहार की डम्मे सारखी उरारी।
अब धुता आरखी पुग्रत पारखी पुरारी।
तियारी वृच्छ छाला तणी अशवारी उप गारणा।
प्रणमो छत्र धारी प्रभु त्रिपुरारि भव तारणा ॥३२॥
विपती रोग वालवा आछा जालवा असंडी।
गरनदेम गालवा पीड टालवा प्रचंडी।
नाच रीत मालवा दिन टाजवा कुल्यारी।
प्रीती नीती पालवा आप पेला उपकारी।
विगारी वार समये विभो धनी थारी ध्रव धारणा।
प्रणमो छत्र धारी प्रभु त्रिपुरारी भव तारणा ॥३३॥
लोभ धूत वसि लोग जोग वेरागन जाणी।
रच्चिया विषय रस रोग ओघ ममता अधिकाणी।
उलझ्या दोग देख दुनिया दुखियारी।
उपर करण अतेरा गेक पेलो डत वारी।
पियारी पाग हारणी प्रवति वारी अधम ओधारणा।
प्रणमो छत्रधारी प्रभु त्रिपुरारी भव तारणा ॥३४॥

(दोहा)

भव तारण धारण भलो, भुजग भभुति भेष।
संत गरज सारण सदा, शरण पदां शमलेश ॥१८६॥

(अथः श्री बद्री विहार वर्णन दोहा) ओंकार निरूपण अन्तर्गत

शंकर सुत संधुर वदन, वक्र तुन्ड वन्दाय।
सुर सरी मोर ममापिये, हरिगुण हिये हुलसाय ॥१६०॥

(छपय छन्द)

जय गनपति गुन गहन दहन दारिद रिधी दायक ।
अणिमादिक सिद्धी अयन गौरी नंदन नण नायक ।
इन्द्रादिक आराधि चरन कमलन चित लायन ।
प्रेम सहित पद पुजि परम पावन बर पावन ।
नावत हमेश सगतेश शिर करिउ कृपा करिवर बदन ।
बद्री बिहार बरनन बिशद सिधी करहु सिद्धी सदन ॥३५॥

(दोहा)

बद्री पती बारिद्धी बिरद, कवि किम वरणी कहंत ।
करी वंदन तुमरी कृपा, ललिता कछुक लहंत ॥१६१॥
मानि विष्नु महेश को सानी सुमति सधीर ।
हंस वाहनी मो हिये, आसन करो अखीर ॥१६२॥
अष्ट सिद्धी अणिमाधि द्वे साधत तुव पद सेव ।
शारद युक्ति समापिये, भक्ति मुक्ती कर भेव ॥१६३॥
विश्व मुकट वैकुन्ठ वर, विरुज विरक्त विलास ।
पाहर परम प्रकाश प्रती, बद्रि पति कृत बास ॥१६४॥
कोटि प्रभा कर क्रान्ती सम, प्रतिदिन रहत प्रकाश ।
विविधी व्योर गंगा बिथुरि, निज बद्रीक निवास ।

(कवित)

कुधर करारे बिकरारे भूरि भारे,
दुरगम दुतारे से निहारे निरधार है ।

फिरी के फुंआरे केते क्रान्ती भ्रान्ती कारे कारे,
मेघ मंडरारे भीम भाद्रव से मार है।
श्वेत शिखरारे विस्तारे भा चिरोचन सी,
अंगन सुढारे धारे हिलके हिमार है।
घर घर घरार धुनि नीर जर नंदी के नारे,
परम पंवारे प्रान प्यारे के पहार है ॥५॥
धोल धधकारे ध्रुव लोक ते धकात धारे,
हिलुने तिहिं वारे निर जर के निहार है।
छोर छद्धकारे पुंज पुहमी प्रवाह पारे।
फंद द्वंद फारे असारे धको अहार है।
जम के जंजारे जर मूल ते जरूर जारे,
सोर सजो सारे व्योर बार में विहार है।
सुकृत सुनिती वारे धनि वे पगार धारे।
परम पंवारे प्रान प्यारे के पहार है ॥६॥

दोहा– तीन लोक तारण तहां, कारण रहीत कृपाल।
अधम उधारन अज अगुन, तन घनश्याम तमाल ॥१९६॥
पृथक पृथक देवा पगा, दुर्धर करत किलोर।
वली यह शिखर बिराजियो, हित करि हेम हिलोर ॥१९७॥
सुर मुनि पद सेवत सदा, प्रमुदा नवधा पौर।
अनुज पद धरि इन्दिरा, हुलसति रहत हजूर ॥१९८॥
सिवो घट मूरती मृदुल, जुगल पानी प्रभु जोरि।
चक्री पति वगशोश करी, मती निज ही रति मोरि ॥१९९॥

(सवैया)

श्री पति स्याम स्वरूप अनुपम वे परशेन परे उदरी ।
श्रुति समृती संतती साखि सुनि सुमरे शिवरी सलिता सुधरी ।
सुर सिद्ध समाज सिहात उन्है पद प्रेम पगार धरे पधरी ।
हिम पुंज प्रकाश हुलाश हिये बैकुन्ट विलास बसे बदरी ॥५१॥
सुरलोक शिरोमनी लोक अलोक विलोकत नोख रटे रूदरी ।
हिम कुंज प्रभाकर कोटि प्रभा कुधरे शीख त्यों हिम की कुधरी ।
बहु व्योर पहार निसोर सजे गरजे जल गंग मचे गुदरी ।
हिम हेरि हुलास हुबास हिये बैकुन्ट विलास बड़े बदरी ॥५२॥

(दोहा)

उरध्व जोजन अर्ध सत, बसत बद्रि पति बास ।
प्रभुपद दरशन पाइये, पूरव पुन्य प्रकाश ॥२००॥

(छपय छन्द)

प्रफुलित विपुल पहार हिलकी हैमार हिलूरनी ।
प्रतिदिन रहत प्रकाश अरक मनो कोटि अकूरनी ।
विपनी व्योर सजि सोर भोर निशो गरजत गंग ही ।
छीर समीर प्रसंग उछली थल सकल प्रसंग ही ।
जहं तहां निवास निर्जर निकर तट गंगा गिरी शिखर तर ।
बद्रिका नाथ बिधु बदन छबि निरखति नित प्रति नारिनर ।

(दोहा)

जो चाहत निज्ज जन्म कुं, सुफल करन संसार ।
चरन कमल चित धरी चढत, पाहन कठिन पहार ॥२०१॥

(छन्द मोक्तीदाम)

नमो निज रूप नमो निज नाम, पगार पहार नि कोटि प्रणाम ।
पुरातन सुकृत ओंसित पाय, उदये होय वा नर को जब आय ॥४०९॥
परे नर ते ब्रय कुन्ट पगार, अनुग्रह श्री सिति कन्ठ अधार ।
जिते नर नारि समागम जोर, करे जमुना जल धारि किलोर ॥४१०॥
जग्रे कुरु क्षेत्र निमंजी सजाय, मदादि मनोभव मोह मिटाय ।
पुरि हरिद्वार ही गंग प्रवाह, उधारत पित्र अधि अव गाह ॥४११॥
हरि जन धाम धुजा रियो केश, पवित्र तपोथल भरत प्रवेश ।
अनंत महा प्रभु झुलन आम, लहे नर गंग तरंग नि लाभ ॥४१२॥
पगार चढे पुर देव प्रयाग, तिहो स्थल तीन हुं ताप को त्याग ।
सजे धनु सायक स्याम शरीर, विराजत ज्यानकी श्री रघुवीर ॥४१३॥
पिना किये राजत रुद्र प्रयाग, मनोरथ पुरण श्री पति माग ।
समूह समूह नि सुन्दर सेल, गंगोतरी कि दिश पछिम गेल ॥४१४॥
पृथी परसे नही पंथ पहार, विधुरति व्योर नि गंग विहार ।
छिहु रितु छिरन की छक छोर, करे शिखरे नद कुदि किलोर ॥४१५॥

(दोहा)

अलस नंदा आवत इते, मन्दा किनो मिलाप ।
झुलन को झकजोर ते, टरत पाप की ताप ॥२२०॥

(छन्द पधरी)

पद धरत वहुरी वद्री पगार, अद्भुत शिखर भूधर अगार ।
गिरी शिखर तरज्जति व्यास गंग, उछलंत छोर भूतल उतंग ॥४१६॥

वृषकेतु गुप्त काशी बिनोद, मन विस्व नाथ लखि अधीक मोद ।
निज रूप बिराजत त्रजुगी नाथ, मुनि मनुज परत पद नायनाथ ॥४१७॥
वास्वती गंग पाहर विलास, होय लीला धार लखि हिये हुलाश ।
चढो तुंग नाथ गिरी दरश चाही, त्रिपुरारि समर्पित सिद्धी ताही ॥४१८॥
पुनि गोरी कुंड प्रेमात पखारि, वर तप्त कूंड बपु मंजी बारि ।
ओखी मठ अरचित सिद्ध ऐल, मृदु मूरत सुखं कर मदि मेन ॥४१९॥
बिच बसत राम बारि बहोरि, हिम शिखर माग सितल हिलोरि ।
दुति परति इस्टो हित करती दोरि, केदार प्रणमती कोरी कोरि ॥४२०॥

(दोहा)

करि प्रणाम केदार कह, निरमल मन सिर नाय ।
पृथक पृथक करी प्रार्थना, गिहजापति गुण गाय ॥२०३॥

(छन्द भुजंगी)

नमो निर्गुणाकार केदार नाथं, नरा गाय बहो रावरी गुढ गाथं ।
आनंदी कृपा जो हुवे आप हीकी, निजानंद की किर्ती निर्वाही नीकी ॥४२१॥
ओईस अविक्तं ऐकं अनेकं, विरागी विभों विस्व वैराट वेखं ।
स्व असुरं गुणाकार सिद्धी स्वरूपं, अभोगरे स्वयंम भोगयोगी अरुपं ॥४२२॥
बिछाये विरुपे तुचा वाघवारी, पहारे हिलुरें हिमाले पियारी ।
लपेटे विभुति सदा देह सोहे, कपाली समोदेव दानी न कोहे ॥४२३॥
भुजंगेश भृगेश भुतेश भोला, उपाया न जाया न माया अतोला ।
बिलोले फुनारे गले हार ब्यालं, जटा जूट गंगा उमंगा उछालं ॥४२४॥
महा मोद कारिल्ल से मुंड माला, भजे भक्ती मुक्ति प्रदं चन्द्रमाला ।
शिवा नादियो सासना संग साधे, अजुनि पदं विष्णु ब्रह्मा अराधे ॥४२५॥

पिलोटे परी पाय पांव प्रणासी, रचि रुद्र प्रेमातुरी रूप रासी ।
किये कुंडली भूधरा वृन्द केते जुरे शिखरे हेम के पुन्ज जेते ॥४२६॥
नरी नक्ती भव तारणी तेज भाशे, प्रभा मंडली कोटि भानु प्रकाशे ।
गुणागार ते सारदा शेप गावे, पदासरण सकतेश क्या पार पावे ॥४२७॥

(दोहा)

परि पंकज केदार पद, धरि उर शंकर ध्यान ।
बोल सुनि जहां बंम के, पुनि तहां करत पयान ॥२०॥

(छपय छन्द)

जहां ठहरं कहां जाय न्हाय केदार शीश वर ।
उदय भाग भयो आज काज पशुपाल कृपाकर ।
शंकर मुखते सुफल सुनेउ सुर सिध सुहावन ।
मरन जरा मिटि गयेउ भयेउ मेटत मन भावन ।
पावन कृपाल पद रज परसि दरश कृपा करिके दियो ।
अरश को नाथ मेतो अधम कुन्द सरस क्यो कर कियो ॥३७॥

(दोहा)

कम्बु पान करी कुंडते, मन्दा किनी तन मंजि ।
गोपेश्वर के पद ग्रहत, केवल कोमल कंज ॥२०५॥
सोहत चहुं ओरे शिखर, बीच बास वृप केतु ।
उदित धुवा कर से प्रभा, नभ लो करत निकेतु ॥२०६॥

(छन्द दोधक)

हेम हिन्दुरी विराजत श्री हर, गिरी कुंडली बीच शोभे गोपेस्वर ।
निश त्रिगुनी द्वार लगि तरके, जम दल अंक धरक रहे जरके ।

परशराम तप इहि स्थल पोखे, श्री सिति कंठ आप सन्तोखे।
सब गोपीन मिली सेवा साधी, वृष भारुढ हरो सब व्याधी ॥४२८॥

(दोहा)

चित धरि शंकर के चरन, अरचित देव उदार ।
मनसा पुरण मनुज की, करते पंच केदार ॥२०७॥

(छपय छन्द)

श्री शंकर शिर नाय अलख नंदा चलि आवत ।
लखि धारा की लहरि लाल सांगे पग लावत ।
उतरि गंग अवगाह वायु नंदन पद वंन्दे ।
हनुमत चटि हेरि ऐक रद बदन अनंदे ।
वन्दे गणेश घाटी बहुरि बद्री पति छबी निरखी बर ।
प्रणमामी स्वामी प्रभुता परम करत सकल जन जोरि कर ॥३८॥

(दोहा)

धनि पाहरी धनि गंग ध्वनि, धन धवला निज धाम ।
धन्य हिमालय धरनि जहां, बद्री पति विश्राम ॥२०८॥

(सवैया)

लखिं हेम हिलुर निकी लहरी गहरी धुनि गंग की गाजत है।
हलके धृति स्वेत पहारन की शिखरे तल स्यामल साजत है।
शिर पे बग मानहुं स्याम घटा लखि मेघ छटा मन लाजत है ।
सजि मन्दिर शोभ सुधाकर सो बदरी पति आप बिराजत है ॥५३॥
परशे घन स्वेत पहारन में सरसे पुनि स्याम समाजत है।
बरसे मिली बद्रनि बारि धरा बहु बुन्दनि भूधर वाजत है।

बरसै दुति दामनि दोरि दुरे घमंडे र बलाहक गाजत है।
सजि मन्दिर श्वेत सुधाकर सो बदरी घनश्याम विराजत है ॥५४॥

(दोहा)

निरखि शोभा निराकार की, हरसित मन्दिर हेरि।
नन्दन दरशन लालसा, कमला पति पद केरि ॥२०९॥
पायन द्वै पञ्च तिर्थी, पंच कुन्डे रचि पुरि।
परत पाय परिव्रह्म के, दुख दारिद्र होय दुरि ॥२१०॥
परि परि नर अरविन्द पद, विनवत वारंम्वार।
भव सागर के भूरते, नाथ कियो निस्तार ॥२११॥

(छन्द मोक्तीदाम)

विनिये करि श्री हरि धाम विलोकि, उमाहत चाहत रूप अलोकि।
परे नर आतुर पंकज पाय, लहे सुख स्याम छटा नख लाय ॥४२९॥
करे विनती पुनि दो कर जोरि, बन्दे पद कृति वहोरि वहोरि।
ओहो धनिय चरण अरविन्द, सवाजन पालक सेव्य स्वछन्द ॥४३०॥
अधिरिषी नारि दुखि भूष आय, परि पति श्राप शीला तनु पाय।
निवाजि पदाम्बुज ते उहिनारि, तिहुंपुर किरतीय लिधी अतारि ॥४३१॥
विकाशत रावण कुं शुभ बात, लगे रिषी मुठ दई उठि लात।
कहि परि पायन बन्धु कुचाल, विभीक्षण लंक कियो भूपपाल ॥४३२॥
पदा प्रगटायक गंग प्रवाह, अधा निर तुलनी कृति अथाह।
पितामह शंकर पुजती पाय नव ग्रह बन्दत शीश नमाय ॥४३३॥
सदा पद सेवत अठोहि सिद्ध, निमे पद निरज से नव निद्ध।
धरे सनकादिक से पद ध्यान, धराधिप नितो कथे पद ज्ञान ॥४३४॥

पदा गुण सारद पारन पाय, लगी रहे ध्योस निशा लवलाय ।
निरा चरणां गुण नारद गाय, बिहारत सुन्दिर वेण बजाय ॥४३५॥
अडिग भये ध्रुव पाय अराधि, सुधारस शील समाधिये साधि ।
पियो जल कीर पखारि के पाय, उधारि कुटुम्ब लियो अपनाय ॥४३६॥
कथा प्रभुता इन पायन केरि, नगेश रु ईश निपावनी बेरि ।
प्रभा धरनु पर सो हित पाय, मनो भव देखि रहे मुरझाय ॥४३७॥
सबे तन शोभ लहे घनश्याम, करो नव छावरि कोटिक काम ।
पटम्बर अम्बर के दुति पेखि, बिशारति दामनी क्रान्ती विशेखि ॥४३८॥
हुलासत होरन को गल हार, बिकासत मोतिन माल बिहार ।
चहुँ दिशी रक्षन को भुज चार, भजे भव आरती भंजन भार ॥४३९॥
निहारत आनन क्रान्ती निधान, मथे केई कोटि सुधाकर मान ।
नरोत्तम पंकज से जुग नैन, बिधु बरसंत सुधा सम जैन ॥४४०॥
सबे सकुचे सुख तुन्ड सम्हारि, निहसे मन्द नाशिका रूप निहारि ।
किलोकित कुन्डल की छबि कान, कथु भृकुटि सम काम कमान ॥४४१॥
किते नंग संघुत कंचन कूट, दिनंकर कोटि उगे छबि दीठ ।
उध्योतंम अंकसी मन्दिर आभ, लखे नर पावत बंछित लाभ ॥४४२॥
फबे छतरी शिर कंचन फूल, ओहो निशी दामनिसि अनुकूल ।
मय मणि मन्डित चित्र मिनाय, प्रभा ननि पाहन से प्रगटाय ॥४४३॥
उतारण आरति प्रेम अपार, सदा विधी नारद सो जसु धार ।
सजे घन गंध्रव सोर संगीत, उपं गरु ताल मृदंग अभीत ॥४४४॥
बनावत व्यंजन वेद विधान, परोसत श्री कमला निज पान ।
अरोगत श्री बद्रिपति आप, प्रभाकर कोटिक तेज प्रताप ॥४४५॥

अनुपम उत्सव होत अपार, दिनं प्रति गावहि नाचत द्वार ।
किते गुरु गावत ज्ञान विधान, किते नर वाचत वेद पुरान ॥४४६॥
हरि पद स्पोरनि गाजत गंग, तरज्जत त्यारि निहारि तरंग ।
महा चिशिया जुत चित्र विशाल, करे नर पावन वृह्म कृपाल ॥४४७॥
यह बैकुंट मवी अधनूत, निरंजन केलि करे नित नूत ।
स्वरूप विलोकत शंकर शेष, सदा पद सरण पर्यो सगतेश ॥४४८॥

(दोहा)

करि विनती कर जोरि के, परि निज पंकज पाय ।
वसुधारा हिम वरफ मे, जहां मंजन कोई जाय ॥२१२॥
परत प्रवाह पहार ते, प्रबल प्रछाल पठार ।
हेम क्रान्ती जन हित करनि, कुक्रम विपट कुठार ॥२१३॥

(चौपाई)

वसु धारा ते वाहुरि बद्री पती, चरन कमल के चहन धारी चीति ।
आय नांय शिर बेन उचारे, विस्व पाल निज विरद विचारे ॥५४॥
श्री पति मोसे बनेन सेवा, दया करिहो देवन के देवा ।
दीन बन्धु मोहे यह बर दिजे, कमल पदे निश्चल रति किजे ॥५५॥

(दोहा)

यह विनती करि उतरे, धरि हरि को उर ध्यान ।
पुनि भेटत परिब्रह्म के, मग अग हरन मकान ॥२१४॥

(छप्पय छन्द)

परशत वृन्ह प्रयाग सकल जन भाग सिहावत ।
मोदित गंग मिलाप निरखि निरमल चित नहावत ।

पेखत करण प्रयाग आद बद्री अवलोके।
सोहि मुरती घनश्याम धाम पुरन पद धोके।
अलोक रूप अद्भुत अभा परम अभा जगपाल की।
निरदोश होत नैना निरखि निज कृपाल नंदलाल की ॥३९॥

च्यार धाम दिशी च्यार प्यार कर कोई न पेखे।
पुरब पुन्य प्रवाह दया करी जन हरी देखे।
जगन्नाथ निज जोति रूप अनुभव रामेश्वर।
द्वारावती दरशन्न धन्न रणछोड़ धरम धर।
बद्री विशाल कैदार बर विकट धाम सामल बरन।
बैकुन्ट बरफ हेमाल विच हरी समस्त संकट हरन ॥४०॥

जय कृपाल कैदार जयति गोपेश गंग धर।
तुंग नाथ त्रिपुरारि वृषभ वाहन विश्वेस्वर।
बद्री पति वृज चंद के नंद नरोत्तम।
नारायण निज ब्रह्म परम प्रितम पुरशोत्तम।
सचित्त नंद सागर सयन श्रीपति स्यामल सूरती।
सगतेश ह्रदय किजे सयन मदन कोटि छबि मूरती ॥४१॥

(दोहा)

श्रीपती गुण सोभा समुंद्र, अहिपती कहत अपार।
यथा शक्ती सगतेश कही, सुमिरण करणो सार ॥२१५॥
जुगती कछु जाणु नही, युक्ती कृपा अनुहार।
बिरद भरोसे बिरनियो, बद्री दरश बिहार ॥२१६॥

(सवैया)

हितु देह धरी को बिचार हिये वदरी पती देखन प्रिती वढे ।
चरण जल जातक से चित दे चलो पाहर पिठी पगार चढे ।
दरशे परसे सुखमा सरशे रुचि पुरण के जप जाप रढे ।
फल सोहि प्रभा लखि पावत है वदरी पती माग विहार पढे ॥५५॥

दोहा— निधि दुणी शगी दे सतक, वेद अंक द्वे वार ।
किनो मास कुआर में, वद्री दरश विहार ॥२१७॥

(सवैया)

गूंग गुनि परशे हरी पाय उमाही को देव पुरे घर आयो ।
प्रिति करो कमला पती की सगतेश को यों उपदेश सुनायो ।
गंग विहार पहार पगार यथा जुत ज्यों जिही ठाम जनायो ।
सो सुनिके निज युक्ती समा वदरी पती धाम विहार वनायो ।

* बद्री विहार सम्पूर्ण *

दोहा — इहि ॐकार निरूपण ही पढे गुने करी प्रीत ।
शानुकूल शंकर सदा समपही सिद्धी सुनीत ॥२१८॥

ॐकार निरूपण ग्रन्थ यह कविता शक्तेस विचार कियो ।
धर देश ढुढार डिगी पति छाह दतोप दिगम्बर वास दियो ।
वरवा निज वंश विरिन्चो वनाय लिखाय के पुस्तक पुजि लियो ।
कुल म्हागद वंश प्रसन्न कला पद्युपान्न पदाम्बुज प्रेम पियो ॥५७॥

इति श्री कवि शक्तसिहजी विरचितं सकल पातिकं,
नासित ॐकार निरूपण ग्रन्थ सम्पूर्णं

* शुभ मस्तु श्रीरस्तु *

मुद्रक — श्री बजरंग प्रेस, भीम

—: शुद्धि पत्र :—

क्रमांक	पृष्ट	लाइन	अशुद्ध	शुद्ध
1.	1	1	कवी खिताब कुछ भुज	कवि खिताब कच्छ भुज कियो
2.	4	17	हमारे मे नही आया	हमारे देखने मे नही आया
3.	47	10	आप लिख म्हागद अरपे	आप लिख मह़ा गद अरपे
4.	48	3	पुनरमल	पुरनमल
5.	50	11	छबि गिरीवर सरीजन कटा	छबि गिरीवर सरीजन छटा
6.	,,	17	दोखिये	देखिये
7.	51	5	सारे	सोर
8.	54	7	किलो अर्ग सिर कियो	किलो अर्ध गिरी सिर कियो
9.	55	5	मयक	भयंक
10.	59	12	घर मंडर श्री	घर मडन श्री
11.	60		नर दम	[illegible], मर्द
12.	67	7	सु खला खन गंग	सु खला खल गंग
13.	,,	13	वृन्द वृन्द के विनोदे	वृन्द के वृन्द विनोदे
14.	79	17	असर वाह जंत	असंखाह जंत
15.	80	3	विध्वसन यज्ञ कियो तिही निज वेरो	विध्वसन यज्ञ कियो तिहीं वेरो
16.	84	11	प्रताप पतग सो	प्रताप को पतंग सो
17.	87	17	थिरतान विधान गान थला	थिर तान विधानन गान थला
18.	89	13	सघन तन स्याम घघ बसन	सघन तन स्याम घन वसन
19.	94	9	भुव पाल अनूचित सोर भयो	भुव व्योम अनूचित सोर भयो
20.	95	8	धोरी चिटे	दोरी चित्ते
21.	111	9	भवादि नर्क भावनी	भवादि नर्क भानवी
22.	113	10	आहर भेज्यो ईश	अहार भेज्यो ईश
23.	115	16	दसु दिसी वान छाये	दसु दिसो वान छाये
24.	116	19	मुख तोरि लानत मारी	मुख तोरि लातन मारी
25.	119	14	सिघारत कीखरू भालू समूह	सिघारत किसरू भालू समूह
26.	125	17	घटा मेघ काली	चढी लंक ते ज्यू घटा मेघ कारी
27.	127	13	वीर अग्ढ	वीर अरुठठ
28.	130	3	वहु रथंग कपि भालून रीस भई	वहु रंग कपी भालून रीस भई
29.	,,	16	गद पद पिछे फीरे	सर सेल गिरे पद पिछे फिरे
30.	134	5	वायु तयन सुग्रीव वर	वायु तनय सुग्रीव वर
31.	,,	10	बन दडक बन वासी	वन दंडक वासी

क्रमांक	पृष्ट	लाइन	अशुद्ध	शुद्ध
32.	134	12	भव भव हारी	भव भय हारी
33.	135	8	आतुर पलिका पोढाये	प्रेम आतुर पलिका पोढाये
34.	137	14	ममलेश्व	ममलेश्वर
35.	138	11	गिरि तयरु गिरीस	गिरि तनियारु गिरीस
36.	140	18	पेखि नरा वल पावत है	पेखि नरा थल पावत है
37.	141	5	कानन गंग किलोलन-प्रभु	कानन गग किलोलन में प्रभु
38.	143	5	प्रभा प्रकासण पारडा	प्रभा प्रकासण पाहडा
39.	145	2	गोरी नंदन नण नायक	गोरी नदन गण नायक
40.	146	10	अमारेथ को अहार है	सारे अंत्र को अहार है
41.	147	8	वैकुट विलास वड़े वदरी	वैकुट विलास वसे बदरी
42.	149	10	गीहजा पती गुण गाय	गिरजा पती गुण गाय
43.	155	13	के नन्द नरोत्तम	नन्द के नन्द नरोत्तम

(दोहा)

यह ग्रन्थ ॐकार का, कवि सकत की कीत ।
छाप्यो चत्र सुधारि के, रिधु ग्रन्थन की रीत ॥
कछुक भूल मेरी कहा, अरु प्रेस की आन ।
सज्जन पढहू सुधारि के, यही पुस्तक गुणवान ॥

—चतरसिंह

नोट— महाशयजी, नम्र निवेदन है कि इस ओंकार निरुपण ग्रन्थ का कोई भी प्रकट काव्य किसी भी महानुभाव के पास रह गई हो तो कृपया हमारे पास भेजने का कष्ट फरमावे ताकि वह काव्य दूसरी प्रत मे छपवा दिया जावेगा।

दासानुदास। आपका — चतरसिंह चिताम्बा

❖ पुस्तक प्राप्त करने का पता ❖

श्रीयुत चतरसिंहजी नयरसिंहजी

मु० पो० चिताम्बा जिला भीलवाड़ा (राजस्थान)